

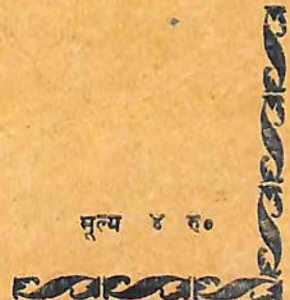
नमः स्वच्छन्दभैरवाय

परमार्थसारः

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्याभिनवगुप्त-विरचितः

प्रभादेवी-विरचित-भाषाटीकोपेतः

ईश्वर-आश्रम,
गुप्तगंगा, काश्मीर।



मूल्य ४ रु०

शैव - योग - संपन्न

अद्वितीय गुरुवर्य

श्रीमान् ईश्वर - स्वरूप जी के

चरण – जलजों में

सादर समर्पित

द्वितीय पुष्प ।

To My dearest
Samvit Prakash jee
with Richest Blessings

Lakshmanjoo

ॐ

भूमिका

शैवशास्त्र के पारंगत आचार्य अभिनवगुप्त जी के नाम से कौन शैवी विद्वान् परिचित नही है। उन्होंने तन्त्रालोक, परात्रिंशिका-विवरण, ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी, गीतार्थ-संग्रह जैसे सैद्धान्तिक ग्रन्थों को लिख कर तन्त्रों के तात्त्विक मर्म का प्रकाशन किया है। जहां उन्होंने बृहद्ग्रन्थों को लिख कर शैव-शास्त्र में चार चांद लगाये हैं, वहां छोटे छोटे सैद्धान्तिक ग्रन्थों को लिख कर सुकुमार बुद्धि वाले मुमुक्षुओं के प्रति उपकार भी पूर्ण रूप में किया है।

'परमार्थसार' नामक यह ग्रन्थ श्रीमान् अभिनवगुप्त जी का सारगर्भित, पक्षपात-रहित, ज्ञान से पूर्ण कुल सौ कारिकाओं में ग्रथित छोटा सा ग्रन्थ है। यदि इसे संपूर्ण शैव-शास्त्र की कुंजी के तुल्य मानें तो अत्युक्ति न होगी। इस की भाषा सरल तथा हृदय-ग्राही है। वैसे यह शास्त्र, सांख्य-मत के 'आधार-कारिका' नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है। इन्हीं कारिकाओं को शैवी छाप देकर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

आचार्य अभिनवगुप्त जी ने इस शास्त्र में कुल १०५ कारिकाओं की रचना की है, किन्तु इन कारिकाओं में पहिली कारिका मंगलाचरण की द्योतक है। दूसरी और तीसरी कारिकाओं में यह वर्णन किया है कि इस 'परमार्थसार' नामक शास्त्र का अवतरण आधार-कारिका से हुआ है। एक सौ चौथी कारिका में आचार्य अभिनवगुप्त जी ने अपना नाम लिख कर संक्षिप्त शब्दों में परमार्थ का ज्ञान हृदयंगम करने वाले योगी को शिव-भाव की प्राप्ति शीघ्र होगी, एसा वचन दिया है और एक सौ पांचवीं कारिका में ग्रन्थकार ने अपना परिचय तथा इस शास्त्र की महानता की ओर संकेत किया है। अत-एव पहिली तीन कारिकाओं को तथा अन्तिम दो कारिकाओं को छोड कर 'परमार्थसार'

नामक शास्त्र सौ कारिकाओं में ग्रथित हुआ है, तभी तो आचार्य जी स्वयं अन्त में कहते हैं—

"आर्याशतेन तदिदं
संक्षिप्तं शास्त्रसारमतिगूढम्"

चौथी कारिका से उनतालीसवीं कारिका तक, इस विश्व के बनने का कारण, शिव की स्वतंत्र इच्छा से पशु-भाव अर्थात् जीव-भाव को धारण करना तथा जीव बन कर अन्तःकरण, षट्कंचुक, बहिष्करण आदि का निर्माण तथा पुनः अपनी स्वतंत्र इच्छा से जीव-भाव से शिव बनने का उद्योग करना—आदि विषयों पर एक विशद् दृष्टि डाली गई है।

चालीसवीं कारिका में आत्मा में अनात्म-भावना तथा अनात्मा शरीर में आत्म-भावना का होना ही दो भयंकर भ्रांतियां हैं, उन का मूलोच्छेदन करने वाले योगी को पुनः कोई कर्त्तव्य करना शेष नहीं रहता, इस सिद्धान्त पर दृष्टि डाली गई है।

इकतालीसवीं कारिका से पैंतालीसवीं कारिका तक "सौः" मन्त्र का निर्णय, जिसे तान्त्रिक प्रणव का नाम दिया गया है, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया का समन्वय बता कर किया गया है।

छितालीसवीं कारिका से उनसठवीं कारिका तक परमार्थ-मार्ग की प्राप्ति का उपाय, योगी की वासनाओं के दग्ध होने पर पुनर्जन्म का न होना तथा परमार्थ रूपी धन होने से किसी प्रकार की भी दुर्गति न होने की प्रतिज्ञा की गई है।

साठवीं कारिका में सरल तथा नपे-तुले शब्दों में मोक्ष का निर्णय किया गया है।

इकसठवीं कारिका से सौवीं कारिका तक शैवी योगियों की स्थिति, अवस्था अभ्यास आदि पर तथा मृत्यु के पश्चात् योगभ्रष्ट आदि अवस्था की प्राप्ति पर एक विशद् तथा रुचिकर भावों का प्रदर्शन किया गया है।

एक सौ एक कारिका से एक सौ तीसरी कारिका तक इस परमार्थ का महत्व प्रदर्शन करते हुए इस मार्ग पर चलने के लिए भरसक प्रयत्न करना

चाहिये, इस कथन की पुष्टि में 'यथा तथा प्रयतनीयम्' इस प्रकार का उपदेश किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का कलेवर रचा गया है।

इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका आचार्य योगराज ने की है। ये अभिनवगुप्त जी के शिष्य न होकर आचार्य श्री क्षेमराज जी के शिष्य थे। क्षेमराज जी अभिनवगुप्त जी के प्रधान शिष्य माने जाते थे। इसी ग्रन्थ के अन्त में आचार्य योगराज जी ने निम्न श्लोकों में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है।

श्रीमतः क्षेमराजस्य सद्गुर्वाम्नायशालिनः।
साक्षात्कृतमहेशस्य तस्यान्तेवासिना मया॥
श्रीवितस्तापुरीधाम्ना विरक्तेन तपस्विना।
विवृतिर्योगनाम्नेयं पूर्णाद्वयमयी कृता॥

योगराज जी के इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि वे शहर में ही वितस्ता नदी के आर पार कहीं रहते थे। उन्होंने इस परमार्थसार-नामक ग्रन्थ की कारिकाओं का संस्कृत गद्य में निर्णय विशद रूप में किया है, जिस के फल-स्वरूप ग्रन्थकार के तात्त्विक भावों का प्रदर्शन हुआ है।

ईसवी संवत् १९५३ में, मैं ने तथा ब्रह्मवादिनी शारिका देवी जी ने, स्वनामधन्य गुरुमहाराज ईश्वर-स्वरुप जी की छत्र-छाया में रह कर इस ग्रन्थ का अध्ययन किया। उन्होंने हमें कश्मीरी भाषा में इस ग्रन्थ को पढाया। मैं ने तभी विचारा कि इस ग्रन्थ का सरल शब्दार्थ हिन्दी भाषा में होना चाहिये, जिस से उन मुमुक्षुओं का उद्धार हो जो परमार्थ समझना तो चाहते हैं किन्तु संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं रखते हैं। मैं ने तभी इस का हिन्दी उल्था अपनी सुकुमार मति के आधार पर करना प्रारम्भ किया। कई वर्ष यह अनुवाद इसी रूप में मेरे पास पडा रहा। कुछ वर्षों से कुछ महिलायें जो इस शास्त्र की इच्छुका थीं, उनकी सतत-प्रेरणा के फल-स्वरूप इस अनुवाद को उनके हितार्थ छपवाना पडा।

इस अनुवाद का संशोधन आदरणीय प्रोफेसर पृथ्वीनाथ जी पुष्प ने भी किया है। उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस अनुवाद को प्रेम से पढा, तदनन्तर कई शब्दों के उपलक्ष में ठेठ हिन्दी के शब्द लिख कर अनुवाद की शोभा

द्विगुणित कर दी। उनके इस प्रयास के लिए उनको हार्दिक धन्यवाद दिये बिना रहा नहीं जाता।

इन के अतिरिक्त श्री नीलकण्ठ जी गुरुटू जो कन्या महाविद्यालय के प्राध्यापक हैं उन्होंने भी इस अनुवाद को तन्मयता से पढा, उस में यथोचित कांट-छांट की तथा कई नवीन उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया। उनके इस निष्काम प्रयास के लिए हम आभारी हैं।

इस पुस्तक का प्रूफ-संशोधन स्वयं गुरु-महाराज जी ने अति-तन्मयता से किया है। उन के लिए कुछ कहना दिवाकर को दीपक दिखाने के समान है। गुरुदेव ईश्वर-स्वरुप जी का इस प्रकार का प्रयास करना उनकी अनुग्राहिका शक्ति का ही परिचायक है।

मुझे पूर्ण आशा है कि जनता इस ग्रन्थ का हृदय से आदर करेगी। इस के अध्ययन से जहां उनको पारमार्थिक लाभ होगा, वहां दूसरी ओर उन्हें शैवी सिद्धान्तों का मर्म भी किसी अंश में ज्ञात होगा। ऐसा होगा तो मेरा यह प्रयास सफल होगा।



ॐ शांति :

१ जनवरी १९७१

प्रभादेवी
ईश्वर-आश्रम
गुप्तगंगा, काश्मीर।



ओं नमश्चिदात्मपरमार्थवपुषे ।

परमार्थसारः

श्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्यश्रीमदभिनवगुप्तपादविरचितः ।

प्रभादेवीविरचितभाषाटीकोपेतः ।

परं परस्थं गहनादनादिम्
एकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं
त्वामेव शंभुं शरणं प्रपद्ये ॥१॥

गहनात्	= माया से	सर्व-	= सभी
परस्थं	= अलग ठहरे हुए	चर-	= जीवित तथा
परम्	= अति उच्च	अचर-	= निर्जीव पदार्थों में
अनादिम्	= आदि - रहित	स्थश्च	= व्याप्त
एकं	= एक होकर (भी)	त्वां	= आप
बहुधा	= बहुत प्रकार की	शंभुम्	= शिव
गुहासु	= (हृदय रूपी) गुफाओं में	एव	= ही की (मैं)
निविष्टं	= ठहरे हुए	शरणं	= शरण में
सर्वालयम्	= सभी का विश्रांति-स्थान बने हुए	प्रपद्ये	= आता हूं ॥ १ ॥

गर्भाधिवासपूर्वक-
मरणान्तकदुःखचक्रविभ्रान्तः ।
आधारं भगवन्तं
शिष्यः पप्रच्छ परमार्थम् ॥ २ ॥

गर्भ-	= गर्भ में	शिष्यः	= (किसी) शिष्य ने
अधिवास-	= रहने से	भगवन्तम्	= भगवान्
पूर्वक-	= लेकर	आधारं	= शेषनाग से
मरण-अन्तक-	= मरने तक	परमार्थं	= परमार्थ अर्थात् आवागमन से छूटने का उपाय
दुःख-चक्र-	= दुःख की चक्की में	पप्रच्छ	= पूछा था ॥ २ ॥
विभ्रान्तः	= (पिसा जाकर) घबराये हुए		

आधारकारिकाभि-
स्तं गुरुरभिभाषते स्म, तत्सारम् ।
कथयत्यभिनवगुप्तः
शिवशासनदृष्टियोगेन ॥३॥

गुरुः	= गुरु ने	तत्सारम्	= उसी (उपदेश) का सार
तम्	= उस शिष्य को	अभिनवगुप्तः	= अभिनवगुप्त
आधार-कारिकाभिः	= अपनी आधार-* कारिकाओं के द्वारा	शिव-शासन-	= शैव-दर्शन के†
अभिभाषते-स्म	= उपदेश दिया था,	दृष्टियोगेन	= सिद्धान्त के अनुसार
		कथयति	= कहता है ॥ ३ ॥

१ '*आधार' शब्द से शेषनाग का अभिप्राय है। 'आधारकारिका' उन कारिकाओं को कहते हैं जो सर्वप्रथम शेषनाग ने ही कही थीं।

२ †वास्तव में 'आधारकारिकायें सांख्य-दर्शन में वर्णित प्रकृति-पुरुष-विवेक के सिद्धान्त को दृष्टि में रख कर लिखी गयी थीं। यहां पर अभिनवगुप्त जी ने अद्वैत शैव-सिद्धान्त के आधार पर उनकी व्याख्या की है।

निजशक्तिवैभवभराद्
अंडचतुष्टयमिदं विभागेन
शक्तिर्माया प्रकृतिः
पृथ्वी चेति प्रभावितं प्रभुणा ॥ ४ ॥

प्रभुणा	= प्रभु ने	इदम्	= इन
शक्तिः	= शक्ति,	अंड-चतुष्टयम्	= चार अंडों को
माया	= माया,	निज-	= अपनी
प्रकृतिः	= प्रकृति,	शक्ति-	= शक्तियों के
च	= और	वैभव-	= ऐश्वर्य के
पृथ्वी	= पृथ्वी	भराद्	= उच्छलन से
इति	= इस प्रकार	प्रभावितम्	= उत्पन्न किया है ॥४॥
विभागेन	= विभाजन करके		

तत्रान्तर्विश्वमिदं
विचित्रतनु-करण-भुवनसंतानम् ।
भोक्ता च तत्र देही
शिव एव गृहीतपशुभावः ॥ ५ ॥

तत्र-	= इन्हीं (चार अंडों)	च	= और
अन्तः	= में	तत्र	= वहां (विश्व में)
इदम्	= यह "इदम्" शब्द से कहा गया)	भोक्ता	= (जगत् के सभी भोगों को भोगने वाला
विश्वम्	= जगत्	देही	= देहधारी (जीवात्मा) है। (जो कि वास्तव में)
विचित्र-	= नाना प्रकार के	गृहीत-	= (अपनी इच्छा से) धारण किये हुए
तनु-	= शरीरों,	पशुभावः	= जीवभाव से युक्त
करण-	= इन्द्रियों,	शिवः	= शिव
भुवन-	= भुवनों के	एव	= ही है ॥५॥
संतानम्	= अनन्त प्रवाहों से युक्त बना है।		

नोट :— 'इदम्' रूप में अवभासित होने वाला यह नामरूपात्मक जगत्, परमात्मा के स्वातन्त्र्य के उछाल (Overflow) से ही उत्पन्न होता है।

नानाविधवर्णानां
रूपं धत्ते यथामलः स्फटिकः।
सुरमानुषपशुपादप-
रूपत्वं तद्वदीशोऽपि ॥ ६ ॥

यथा	=	जैसे	तद्वत्	=	उसी प्रकार
अमलः	=	निर्मल	(अमलः)	=	निर्मल (अद्वैत रूप)
स्फटिकः	=	स्फटिक (रत्न)	ईशः	=	ईश्वर
नानाविध-	=	अनेक प्रकार के	अपि	=	भी
वर्णानाम्	=	(नीले, पीले आदि) रंगों के	सुर-	=	देवताओं
			मानुष-	=	मनुष्यों,
रूपम्	=	स्वरूप को	पशु-	=	पशुओं (और)
			पादप-	=	वृक्षों के
धत्ते	=	(अपने में) धारण करता है।	रूपत्वम्	=	आकार को
			धत्ते	=	धारण करता है ॥६॥

गच्छति गच्छति जल इव
हिमकरबिम्बं स्थिते स्थितिं याति।
तनुकरणभुवनवर्गे
तथायमात्मा महेशानः ॥ ७ ॥

(यथा)	=	जैसे	*तथा	=	वैसे ही
हिमकर-	=	चन्द्रमा का	अयम्	=	यह
बिम्बं	=	प्रतिबिम्ब	आत्मा	=	आत्म तत्त्व
गच्छति	=	बहते हुए	महेशानः	=	महेश्वर भी
जले	=	जल में	तनु-	=	शरीर,
गच्छति	=	बहता हुआ	करण-	=	इन्द्रिय (और)
इव	=	सा (और)	भुवन-वर्गे	=	भुवनों के समूह में उस रूप में
स्थिते	=	ठहरे हुए (जल में)			
स्थितिं याति	=	ठहरा हुआ सा दिखाई देता है	स्थितिं	=	स्थिति को
			याति	=	प्राप्त करता है ॥७॥

*अर्थात् शरीरों, इन्द्रियों तथा भुवनों के समूह में प्रभु, शरीर इत्यादि का स्वरूप ही बन जाता है।

राहुरदृश्योऽपि यथा
शशिबिम्बस्थः प्रकाशते तद्वत् ।
सर्वगतोऽप्ययमात्मा
विषयाश्रयणेन धीमुकुरे ॥८॥

यथा	=	जैसे
राहुः	=	राहु (नक्षत्र) (आकाश में)
अदृश्यः	=	दिखाई न देने पर
अपि	=	भी
शशि-	=	चन्द्रमा के
बिम्बस्थः	=	बिम्ब में ठहरने पर
प्रकाशते	=	दीख पड़ता है ।
तद्वत्	=	वैसे ही
अयम्	=	यह
आत्मा	=	परमात्मा
सर्वगतः	=	प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त
अपि	=	होने पर भी (मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं)
(इत्येवं)	=	इस प्रकार से
विषय-	=	विषयों के
आश्रयणेन	=	ग्रहण करने से
धी-मुकुरे	=	बुद्धि रूपी दर्पण में
प्रकाशते	=	भासित होता है । ॥८॥

आदर्शे मलरहिते
यद्वद् वदनं विभाति तद्वदयम् ।
शिवशक्तिपातविमले
धीतत्त्वे भाति भारूपः ॥९॥

यद्वत्	=	जैसे
मल-रहिते	=	निर्मल
आदर्शे	=	दर्पण में
वदनं	=	मुख
विभाति	=	स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।
तद्वत्	=	वैसे ही
अयम्	=	यह
भारूपः	=	प्रकाश-स्वरूप (आत्मा)
शिव-	=	शिव के
शक्तिपात-	=	अनुग्रह से
विमले	=	निर्मल बने हुए
धी-तत्त्वे	=	बुद्धि-तत्त्व में
भाति	=	प्रकाशित होता है ॥९॥

भारूपं परिपूर्णं
स्वात्मनि विश्रान्तितो महानन्दम् ।
इच्छासंवित्करणै-
र्निर्भरितमनन्तशक्तिपरिपूर्णम् ॥१०॥
सर्वविकल्पविहीनं
शुद्धं शान्तं लयोदयविहीनम् ।
यत्परतत्त्वं तस्मिन्
विभाति षट्त्रिंशदात्म जगत् ॥११॥
[युगलकम्]

भारूपम्	=	प्रकाश-स्वरूप
परिपूर्णम्	=	किसी की आवश्यकता से रहित
स्वात्मनि	=	अपने स्वरूप में ही
विश्रान्तितः	=	नित्य स्थित होने से
महानन्दम्	=	आनन्द-पूर्ण
इच्छा-	=	इच्छा,
संवित्	=	ज्ञान (और)
करणैः	=	क्रिया-शक्ति से
निर्भरितम्	=	भरपूर (साथ ही)
अनन्त-	=	असीम
शक्ति-	=	शक्तियों से
परिपूर्णम्	=	युक्त
सर्व-	=	सभी
विकल्प-	=	विकल्पों (विचारों) से
विहीनम्	=	रहित,
शुद्धम्	=	निर्मल,
शान्तम्	=	शान्त,
लय-उदय-	=	जन्म-मरण से
विहीनम्	=	रहित
यत्	=	जो
पर-तत्त्वम्	=	परमात्म-देव का स्वरूप है,
तस्मिन्	=	उसी में
षट्त्रिंशद्-	=	छत्तीस तत्त्वों
आत्म	=	वाला
जगत्	=	यह विश्व
विभाति	=	विशेष-रूप में आभासित होता है अर्थात् दीखने में आता है ॥१०,११॥

दर्पणबिम्बे यद्वत्
नगरग्रामादि चित्रमविभागि ।
भाति विभागेनैव च
परस्परं दर्पणादपि च ॥१२॥

विमलतमपरमभैरव-
बोधात् तद्वद्विभागशून्यमपि ।
अन्योन्यं च ततोऽपि च
विभक्तमाभाति जगदेतत् ॥१३॥

[युगलकम्]

यद्वत्	=	जिस प्रकार
दर्पण-	=	शीशे के
बिम्बे		प्रतिबिम्ब में
अविभागि	=	(शीशे से) अलग न होते हुए
नगर-	=	शहर
ग्राम-	=	गांव
आदि	=	आदि (सभी पदार्थ)
परस्परम्	=	आपस में
च	=	और
दर्पणाद्	=	शीशे से
अपि च	=	भी
विभागेन	=	भिन्न
एव	=	ही,
चित्रम्	=	विचित्र (रूप से युक्त)
भाति	=	दीखते हैं
तद्वत्	=	उसी प्रकार
एतत्	=	यह
जगत्	=	संसार
विमलतम-	=	अत्यन्त निर्मल
परम भैरव-	=	पर भैरव रूप
बोधात्	=	संवित् - दर्पण से
विभाग-	=	अलग
शून्यम्	=	न होने पर
अपि	=	भी
अन्योन्यं च	=	एक दूसरे के साथ भी
ततः	=	उस संवित् रूप ईश्वर से
अपि च	=	भी
विभक्तं	=	पृथक ही
आभाति	=	दिखाई देता है ।१२,१३॥

शिवशक्तिसदाशिवता-
मीश्वर-विद्यामयीं च तत्त्वदशाम् ।
शक्तीनां पञ्चानां
विभक्तभावेन भासयति ॥१४॥

(अयं परमेश्वरः)	=	(यह परमेश्वर अपने अभिन्न रूप में अवस्थित)	ईश्वर-	=	ईश्वर
पंचानाम्	=	पांच (चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया)	च	=	और
शक्तीनाम्	=	शक्तियों को	विद्यामयीम्	=	शुद्धविद्या
शिव-	=	शिव	तत्त्वदशाम्	=	इन तत्त्वदशाओं को
शक्ति-	=	शक्ति	विभक्त-भावेन	=	भिन्न-भिन्न रूप देकर
सदाशिवताम्	=	सदाशिव	भासयति	=	प्रकट करता है ।

परमं यत् स्वातन्त्र्यं
दुर्घटसंपादनं महेशस्य ।
देवी मायाशक्तिः
स्वात्मावरणं शिवस्यैतत् ॥१५॥

स्वात्म-	=	अपने स्वरूप को	एतत्	=	यही
आवरणम्	=	ढकना ही	शिवस्य	=	शिव की,
यत्	=	जो	देवी	=	मोह उपजा कर संसार की क्रीडा कराने वाली
महेशस्य	=	महेश्वर का	माया शक्ति	=	माया शक्ति कही जाती है ।
दुर्घट-संपदानं	=	कठिन कार्य को पूर्ण करने का (अर्थात् असंभव को सम्भव करने वाला)			
परमम्	=	उत्कृष्ट			
स्वातन्त्र्यम्	=	स्वातन्त्र्य है ।			

॥१४,१५॥

मायापरिग्रहवशाद्
बोधो मलिनः पुमान् पशुर्भवति ।
कालकलानियतिवशाद्
रागाविद्यावशेन सम्बद्धः ॥१६॥

बोधः = (ज्ञान रूप प्रभु (जो सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता आदि विशेषणों से युक्त है।)
माया- = (मुग्ध करने वाली) माया के
परिग्रह- = स्वीकार
वशात् = करने से
मलिनः = (मल-युक्त होकर (अपनी सर्वज्ञता, सर्वकर्तृता आदि गुणों को भूल कर)
पुमान् = पुरुष-तत्त्व
भवति = बनता है।
(यः) = जो

काल- = काल,
कला- = कला,
नियति- = नियति,
वशात् = के द्वारा
राग- = राग और
अविद्या- = अविद्या
वशेन = से (सामान्य पशु की तरह)
संबद्धः = बांधा जाकर
पशुः = पशु (सांसारिक बन्धनों में पड़ा हुआ जीव) कहलाता है ॥१६॥

अधुनैव किंचिदेवे-
दमेव सर्वात्मनैव जानामि ।
मायासहितं कञ्चुक-
षट्कमणोरन्तरङ्गमिदमुक्तम् ॥१७॥

अधुनैव = इसी समय
जानामि = जानता हूं (कालतत्त्व)
किंचिदेव = कुछ सीमित रूप में
जानामि = जानता हूं (कलातत्त्व)
इदमेव = निश्चित रूप से यही नियत वस्तु
जानामि = जानता हूं (नियतितत्त्व)
सर्वात्मनैव = प्रत्येक वस्तु के प्राप्त होने की लालसा से

जानामि = जानता हूं (या किसी भी क्रिया का विषय बनता हूं) [रागतत्त्व]
इदम् = यही
माया- = माया के
सहितम् = समेत
कंचुकषट्कम् = छः प्रकार का कवच
अणोः = जीवात्मा का
अन्तरङ्गम् = आन्तरिक (आवरण)
उक्तम् = कहा गया है ॥१७॥

कंबुकमिव तंडुलकरण-
विनिविष्टं भिन्नमप्यभिदा ।
भजते तत्तु विशुद्धिं
शिवमार्गौन्मुख्ययोगेन ॥१८॥

तत्	=	वह (षट्कंचुक) (जीव के साथ वैसे ही भिन्न होने पर भी अभिन्न रूप से ठहरा हुआ है जैसे)	अभिदा	=	चावल के साथ लगा हुआ होता है। (इसी रूप से जीव के साथ अभिन्न रूप में ठहरा हुआ यह कंचुक उसी प्रकार)
तंडुल-कण-	=	चावल के दाने पर	तु	=	ही
विनिविष्टम्	=	टिके हुए	शिव-मार्ग-	=	स्वात्म-मार्ग की ओर
कंबुकम्	=	कंबुक (भूसे के नीचे और चावल के ऊपरी छिलके) की	औन्मुख्य-	=	बढ़ने
			योगेन	=	से
इव	=	भाँति	विशुद्धिं	=	शुद्धि को
भिन्नम्	=	(चावल) से भिन्न होने पर	भजते	=	प्राप्त होता है। (अर्थात् नष्ट हो जाता है ॥१८॥
अपि	=	भी			

सुखदुःखमोहमात्रं
निश्चयसंकल्पनाभिमानाच्च ।
प्रकृतिरथान्तःकरणं
बुद्धिमनोऽहङ्कृतिः क्रमशः ॥१९॥

सुख-दुःख-	=	सुःख, दुःख और	क्रमशः	=	क्रम-पूर्वक
मोहमात्रं	=	मोह का सामान्य रूप	बुद्धि-		बुद्धि,
प्रकृतिः	=	प्रकृति है।	मनः-	=	मन,
निश्चय-	=	निश्चय (करने से)	अहंकृतिः	=	अहंकार,
संकल्पन-	=	संकल्प (करने से)			
अभिमानात् च	=	और अभिमान (करने से)	अन्तः करणम्	=	(ये तीन) अन्तः-करण कहलाते हैं। ॥१९॥

श्रोत्रं त्वगक्षि रसना
घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि शब्दादौ ।
वाक्पाणिपादपायू-
पस्थं कर्मेन्द्रियाणि पुनः ॥२०॥

शब्दादौ	=	शब्द आदि
(विषये)	=	विषयों को ग्रहण करने के लिए
श्रोत्रं	=	कान,
त्वक्	=	त्वचा,
अक्षि-	=	नेत्र
रसना	=	जिह्वा
घ्राणम्	=	नासिका
बुद्धि-इन्द्रियाणि	=	(ये) ज्ञानेन्द्रियां हैं।
पुनः	=	और
वाक्-	=	वाणी
पाणि-	=	हाथ,
पाद-	=	पैर,
पायु-	=	गुदा (और)
उपस्थं	=	मूत्र इन्द्रिय,
कर्मेन्द्रियाणि	=	ये कर्मेन्द्रियां हैं ॥२०॥

एषां ग्राह्यो विषयः
सूक्ष्मः प्रविभागवर्जितो यः स्यात् ।
तन्मात्रपञ्चकं तत्
शब्दः स्पर्शो महो रसो गन्धः ॥२१॥

एषां	=	इन (ज्ञानेन्द्रियों) का
यः	=	जो
सूक्ष्मः	=	सूक्ष्म (अणुरूप) तथा
प्रविभाग-	=	विभाग से
वर्जितः	=	रहित
ग्राह्यः	=	ग्रहण करने योग्य
विषयः	=	विषय (है)
तत्	=	वही
शब्दः	=	शब्द,
स्पर्शः	=	स्पर्श,
महः	=	रूप,
रसः	=	रस (और)
गन्धः	=	गन्ध
तन्मात्र पंचकम्	=	पाँच तन्मात्रायें हैं ॥२१॥

एतत्संसर्गवशात्
स्थूलो विषयस्तु भूतपंचकताम् ।
अभ्येति नभः पवन-
स्तेजः सलिलं च पृथ्वी च ॥२२॥

एतत्	=	इन तन्मात्राओं के	पवनः	=	वायु,
संसर्गवशात्	=	आपसी संपर्क से	तेजः	=	अग्नि,
स्थूलः	=	स्थूल	सलिलं	=	जल
विषयः	=	विषय	पृथ्वी	=	पृथ्वी
तु	=	तो,	इति	=	इस प्रकार
नभः	=	आकाश	भूत-पंचकताम्	=	पांच महाभूतों के रूप को
			अभ्येति	=	प्राप्त होता है ॥२२॥

तुष इव तंडुलकणिका-
मावृणुते प्रकृतिपूर्वकः सर्गः ।
पृथ्वीपर्यन्तोऽयं
चैतन्यं देहभावेन ॥२३॥

तुषः	=	तुष, (धान का ऊपर का छिलका 'तोह')	पृथ्वी-	=	पृथ्वी (तत्व)
			पर्यन्तः	=	तक
इव	=	जैसे	अयं	=	यह
तंडुल-	=	चावल के	सर्गः	=	(जगत् संबन्धी) सृष्टि,
कणिकाम्	=	दाने को			
आवृणुते	=	पूर्ण रूप से ढकता है (वैसे ही)	चैतन्यं	=	चिदात्मा प्रभु को
			देहभावनया	=	देह रूप से
प्रकृति-	=	प्रकृति	आवृणुते	=	ढकती है ॥२३॥
पूर्वकः	=	से लेकर			

परमावरणं मल इह
सूक्ष्मं मायादिकंचुकं स्थूलम् ।
बाह्यं विग्रहरूपं
कोशत्रयवेष्टितो ह्यात्मा ॥२४॥

इह	=	इस मार्ग में (शिव का)	बाह्यं	=	बाहिरी
परम्-	=	अति सूक्ष्म	विग्रह-	=	शरीर
आवरणं	=	आच्छादन	रूपं	=	रूपी (आच्छादन)
मलः	=	(आणव) मल है,	स्थूलं	=	स्थूल रूप (आवरण) है ।
माया	=	माया (कला, विद्या,)	हि	=	अतः
आदि	=	आदि	आत्मा	=	(यह) आत्मा
कंचुकं	=	षट्कंचुक	कोशत्रय	=	(इन) तीन (पर्दों) से
सूक्ष्मम्	=	सूक्ष्म आवरण हैं । (और)	आवेष्टितः	=	ढकी रहती है ॥२४॥

अज्ञानतिमिरयोगाद्
एकमपि स्वं स्वभावमात्मानम् ।
ग्राह्य-ग्राहकनाना-
वैचित्र्येणावबुध्येत ॥२५॥

एकम्	=	(स्वभावतः) एक अद्वितीय होते हुए	योगाद्	=	के कारण
अपि	=	भी	ग्राह्य-	=	ग्रहण करने योग्य अर्थात् पदार्थ-वर्ग
स्वं	=	अपना			
स्वभावम्	=	स्वभाव बनी हुई	ग्राहक-	=	ग्रहण करने वाला अर्थात् चेतन-वर्ग (इस रूप से)
आत्मानम्	=	आत्मा को, (यह जीव)			
अज्ञान-	=	मूर्खता रूपी	नाना-	=	अनेकानेक
तिमिर-	=	तिमिर रोग (धुंधी रोग के कारण, जिस में एक पदार्थ के दो रूप दिखाई देते हैं)	वैचित्र्येण	=	रंग-विरंगों से युक्त (भिन्न-भिन्न रूप हीं
			अवबुध्येत	=	समझता है ॥२५॥

रसफाणितशर्करिका-
गुड-खंडाद्या यथेक्षुरस एव ।
तद्वदवस्थाभेदाः
सर्वे परमात्मनः शंभोः ॥२६॥

रस-	=	(गन्ने का) रस,
फाणित-	=	बतासा,
शर्करिका,	=	शक्कर,
गुड-	=	गुड,
खण्ड-	=	खांड
आद्या	=	आदि
यथा	=	जैसे
इक्षु-	=	गन्ने का
रसः	=	रस
एव	=	ही हैं
तद्वत्	=	उसी तरह (ये)
सर्वे	=	सभी
अवस्था-	=	(जाग्रत आदि) अवस्थाओं के
भेदाः	=	भेद
परमात्मनः	=	परमात्मा
शम्भोः	=	शिव के ही हैं ॥२६॥

*विज्ञानान्तर्यामि-
प्राणविराड्देहजातिपिण्डान्ताः ।
व्यवहारमात्रमेतत्
परमार्थेन तु न सन्त्येव ॥२६॥

विज्ञ न-	=	'विज्ञानवादी'
अन्तर्यामि	=	अन्तर्यामि वादी
प्राण-	=	प्राणवादी
विराड्-देह-	=	विश्वात्मा वादी
जाति-	=	सत्तात्मा वादी (और)
पिंड	=	पिंडात्मा वादी
अन्ताः	=	तक
एतत्	=	ये (सभी मतमतान्तर)
व्यवहार-	=	केवल व्यवहार
मात्रम्	=	मात्र हैं।
परमार्थेन	=	तत्त्व दृष्टि से
तु	=	तो
न सन्ति	=	इनकी कोई सत्ता ही
एव	=	नहीं है ॥२६॥

*१. विज्ञानवादी कहते हैं कि वास्तव में आत्मा का स्वरूप नाम रूप आदि उपाधियों से रहित केवल बोध ही है।

२. ब्रह्मवादी कहते हैं कि तत्त्व-दृष्टि से आत्मा अन्तर्यामी है।

३. कई ब्रह्मवादी, ब्रह्म का स्वरूप प्राणात्मा है— यह सिद्ध करते हैं।*

रज्ज्वां नास्ति भुजङ्ग-
स्त्रासं कुरुते च मृत्युपर्यन्तम् ।
भ्रान्तेर्महती शक्ति-
र्न विवेक्तुं शक्यते नाम ॥२८॥

रज्ज्वां	=	रस्सी	कुरुते	=	उपजाती है ।
भूजङ्गः	=	सांप	नाम	=	सच तो यह है कि
न	=	नहीं	भ्रान्तेः	=	भ्रान्ति (मोह) की
अस्ति	=	होती	महती	=	महान्
च	=	फिर भी	शक्तिः	=	शक्ति
मृत्यु-	=	मार देने वाला	विवेक्तुं	=	बखानी
पर्यन्तम्	=	सा	न	=	नहीं
त्रासं	=	भय	शक्यते	=	जा सकती ॥२८॥

तद्वद् धर्माधर्म-
स्वर्निरयोत्पत्तिमरणसुखदुःखम् ।
वर्णाश्रमादि चात्म-
न्यसदपि विभ्रमबलाद्भवति ॥२९॥

तद्वत्	=	उसी प्रकार	वर्ण	=	(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) ये चार वर्ण,
धर्म-	=	पुण्य,			
अधर्म	=	पाप			
स्वः-	=	स्वर्ग,	आश्रम	=	(ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यास) ये चार आश्रम,
निरय-	=	नरक			
मरण-	=	मृत्यु,			
सुख-	=	सुख,	आदि	=	(तपस्या, पूजा, व्रत) इत्यादि
दुःखं	=	दुःख			

*४. अन्य वेदानुयायी जन, बृह्म का स्वरूप विराड्देह ही मानते हैं ।

५. वैशेषिक-मतावलम्बी, आत्मा का स्वरूप सर्व-गुणों का आश्रय महासामान्य-सत्ता ही बताते हैं ।

६. चार्वाक आदि बौद्ध-मतावलम्बी पिंड अर्थात् शरीर को ही आत्मा मानते हैं ।

च	=	भी	विभ्रम-	=	भ्रांति के
आत्मनि	=	अपने आप में (स्वयं)	बलाद्	=	प्रभाव से
असदपि	=	कुछ न होते हुए भी	भवति	=	सत्ता को प्राप्त करते हैं ॥२९॥

एतत् तदन्धकारं
यद् भावेषु प्रकाशमानतया ।
आत्मानतिरिक्तेष्वपि
भवत्यनात्माभिमानोऽयम् ॥३०॥

प्रकाशमानतया	=	प्रकाश-स्वरूप होने के कारण	अन-आत्म-	=	आत्मा न मानने का
आत्मा-	=	स्वात्मा से	अभिमानः	=	आग्रह
अनतिरिक्तेषु	=	अभिन्न ठहरने पर	भवति	=	किया जाता है
अपि	=	भी	तद	=	वह
भावेषु	=	पदार्थों में	एतत्	=	यह
यद्	=	जो	अन्धकारम्	=	अन्धकार ही है ॥३०॥
अयम्	=	यह			

तिमिरादपि तिमिरमिदं
गण्डस्योपरि महानयं स्फोटः ।
यदनात्मन्यपि देह-
प्राणादावात्ममानित्वम् ॥३१॥

यद्	=	जो यह	इदम्	=	इस प्रकार समझना
देह-	=	शरीर,	तिमिराद्	=	तिमिर (नेत्र संबन्धी) रोग
प्राण-	=	प्राण	अपि	=	से भी (बढ़ कर)
आदौ	=	आदि (जड वस्तुओं के)	तिमिरं	=	अंधकार है (और)
अनात्मनि	=	अनात्मा होने पर	अयम्	=	यही
अपि	=	भी (इन पर	गण्डस्य	=	कपोल (गाल)
आत्म-	=	आत्म-	उपरि	=	पर
मानित्वं	=	अभिमान करना है अर्थात शरीर प्राण आदि में ही हूं	महान्	=	बड़ा
			स्फोटः	=	फोडा (जैसा भयानक तथा असुन्दरता का सूचक) है ॥३१॥

देहप्राणविमर्शन-
धीज्ञाननभःप्रपंचयोगेन ।
आत्मानं वेष्टयते
चित्रं जालेन जालकार इव ॥३२॥

चित्रं	=	(इस पर भी) अचरज की बात यह है कि
इव	=	जैसे
जालकारः	=	मकड़ा
जालेन	=	(अपने मुँह की झाग से) जाल के द्वारा
आत्मानम्	=	अपने आप को
वेष्टयते	=	ढांप लेता है । (वैसे ही चैतन्य-प्रमाता
देह-	=	देह अर्थात् जाग्रत शरीर,
प्राण-	=	प्राण अर्थात् सुषुप्ति शरीर, प्राण प्रमाता का
विमर्शन-	=	विवेचन करने से
धी-	=	स्वप्न - शरीर रूपी
ज्ञान-	=	बुद्धि से (तथा)
नभः-	=	शून्य-प्रमाता रूपी
प्रपञ्च-	=	भव-जाल
योगेन	=	से
आत्मानम्	=	(अपनी वास्तविक) चेतनता को
वेष्टयते	=	ढांप लेता है ॥३२॥

देहात्माभिमानी = चार्वाक
प्राणात्माभिमानी = योगाचार
बुद्धयात्माभिमानी = मीमांसक
शून्यात्माभिमानी = शून्य को आत्मा मानने वाले बौद्धों की एक शाखा ।

स्वज्ञानविभवभासन-
योगेनोद्वेष्टयेन्निजात्मानम् ।
इति बन्धमोक्षचित्रां
क्रीडां प्रतनोति परमशिवः ॥३३॥

स्व-ज्ञान-	=	निजी स्वातन्त्र्य-ज्ञान के	इति	=	इसी रूप से
विभव-	=	ऐश्वर्य को	परम-शिवः	=	परमेश्वर
भासन-	=	अनुभव करने की	बन्ध-	=	संसार (और)
योगेन	=	युक्ति (प्रक्रिया) से	मोक्ष-	=	मुक्त होने की
निज-	=	अपनी	चित्रां	=	निराली
आत्मानं	=	आत्मा को (यह मुमुक्षु आणवमल आदि पाशों से)	क्रीडां	=	स्वतन्त्रलीला
उद्वेष्टयेत्	=	मुक्त बना देता है।	प्रतनोति	=	रचाता रहता है ॥३३॥

सृष्टिस्थितिसंहारा
जाग्रत्स्वप्नौ सुषुप्तमिति तस्मिन् ।
भांति तुरीये धामनि
तथापि तैर्नावृतं भाति ॥३४॥

सृष्टि-	=	(जगत् की) सृष्टि,	तस्मिन्	=	उस
स्थिति-	=	स्थिति,	तुरीये	=	तुर्य-रूप
संहारा	=	(जगत का) संहार,	धामनि	=	तीर्थ में (अवस्था में)
जाग्रत्	=	जाग्रत,	भांति	=	विकसित होती हैं।
स्वप्नौ	=	स्वप्न (और)	तथापि	=	फिर भी (वह तुर्यावस्था)
सुषुप्तम्	=	सुषुप्ति	तैः	=	उन अवस्थाओं से
इति	=	इस प्रकार की (ये सभी अवस्थायें)	आवृतं	=	ढकी हुई
			न	=	नहीं
			भाति	=	है। ॥३४॥

जाग्रद्विश्वं भेदात्
स्वप्नस्तेजः प्रकाशमाहात्म्यात् ।
प्राज्ञः सुप्तावस्था
ज्ञानघनत्वात्ततः परं तुर्यम् ॥३५॥

भेदात्	=	शब्द आदि विषयों के आपस मे भिन्न दिखाई देने के कारण
जाग्रत्	=	जाग्रत अवस्था ही
विश्वम्	=	परब्रह्म की विराट् अवस्था (विश्व-दशा) है
प्रकाश-	=	(केवल मात्र) प्रकाश की
माहात्म्यात्	=	घनता से
तेजः	=	(परब्रह्म की) तेजावस्था ही
स्वप्नः	=	स्वप्न की दशा है ।
ज्ञानधनत्वात्	=	(आनन्द से रहित) (केवल) ज्ञान-घन होने के कारण
प्राज्ञः	=	परब्रह्म की प्राज्ञ अवस्था ही
सुप्तावस्था	=	सुषुप्ति की दशा है ।
ततः	=	उस से भी
परम्	=	परे (अर्थात् उच्च)
ज्ञानघनत्वात्	=	विमर्श तथा आनन्द-पूर्ण ज्ञान घन होने के कारण
तुर्यम्	=	चौथी, तुर्य अवस्था है ॥३५॥

नोट :— सुषुप्ति और तुर्य इन दोनों अवस्थाओं में यद्यपि ज्ञान का आधिक्य एक जैसा ही रहता है, तथापि सुषप्ति दशा में संस्कारों का समूल नाश न होकर, संस्कार बने रहते हैं। अतः इस में शुद्धचिन्मय रूपता का अनुभव नहीं होता। इधर तुर्य अवस्था में ग्राह्य - ग्राहक रूप संस्कार पूर्णतया नष्ट होते हैं। अतः वह शुद्ध-चिन्मय दशा मानी गई है।

जलधरधूमरजोभि-
र्मलिनीक्रियते यथा न गगनतलम् ।
तद्वन्मायाविकृतिभि-
रपरामृष्टः परः पुरुषः ॥३६॥

यथा	=	जैसे	क्रियते	=	होता
गगन-	=	आकाश-	तद्वत्	=	उसी भांति
तलम्	=	स्थल	परः-	=	सर्वोच्च
जलधर	=	बादल	पुरुषः	=	परमेश्वर (भी)
धूम-	=	धुआं	माया-	=	माया के
रजोभिः	=	धूलि से	विकृतिभिः	=	विकारों से
मलिनी	=	अस्वच्छ (मला)	अपरामृष्टः	=	अछूता है अर्थात् माया के विकार उसे विकृत नहीं बना पाते हैं ॥३६॥
न	=	नहीं			

एकस्मिन् घटगगने
रजसा व्याप्ते भवन्ति नान्यानि ।
मलिनानि तद्वदेते
जीवाः सुखदुःखभेदजुषः ॥३७॥

यथा	=	जैसे	न भवन्ति	=	नहीं होते हैं।
एकस्मिन्	=	एक	तद्वत्	=	उसी भांति
घट-	=	घडे के	एते	=	ये
गगने	=	भीतरी भाग में	जीवाः	=	जीव (भी)
रजसा	=	धूल के	सुख-	=	सुख (और)
व्याप्ते	=	अट जाने से	दुःख-	=	दुःख को (प्रारब्ध के अनुसार)
अन्यानि	=	दूसरे घडे	भेद-	=	भिन्न भिन्न प्रकार से
मलिनानि	=	धूसरित (मैले)	जुषः	=	भोगते हैं ॥३७।

वास्तव में आकाश भिन्न भिन्न नहीं होते हैं। 'घटाकाश' 'मठाकाश' आदि कल्पनायें तो केवल घट या मठ के उपाधि के कारण होती हैं। इसी प्रकार आत्मा तो एक ही है किन्तु अपने ही स्वातन्त्र्य से आणव आदि मलों से अपने को आवेष्टित बनाकर अनेकानेक सुख दुःख हर्ष आदि का उपभोग करती है।

शान्ते शान्त इवायं
हृष्टे हृष्टो विमोहवति मूढः ।
तत्त्वगणे सति भगवान्
न पुनः परमार्थतः स तथा ॥३८॥

अयम्	=	यह
भगवान्	=	प्रभु,
तत्त्वगणे	=	इन्द्रिय-वर्ग के
शान्ते	=	शान्त अर्थात् प्रत्येक क्रिया से निवृत्त होने पर
शान्तः	=	शान्त (शिथिल)
इव	=	सा,
हृष्टे	=	स्वस्थ होने पर
हृष्टः इव	=	प्रसन्न बना हुआ सा, (इन्द्रियों के)
विमोहवति	=	मोहित होने पर
मूढः इव	=	मोह में पडा हुआ जैसा (दिखाई देता है)
पुनः	=	किन्तु
सः	=	वह (प्रभु)
परमार्थतः	=	वास्तव में
तथा	=	वैसा (सतोगुण, रजोगुण या तमोगुण रूपी आवरण से लिपटा हुआ)
न	=	नहीं है ॥३८॥

यदनात्मन्यपि तद्रूपा-
वभासनं तत् पुरा निराकृत्य ।
आत्मन्यनात्मरूपां
भ्रान्तिं विदलयति परमात्मा ॥३९॥

पुरा	=	पहिले
यत्	=	जो
अनात्मनि	=	अनात्मा शरीर आदि वस्तुओं के जड होने पर
अपि	=	भी
तद्रूप-	=	उन्हें आत्मरूप मानने की
अवभासनं	=	भावना है,
तत्	=	उस (भ्रान्ति) को
निराकृत्य	=	दूर करके
पुनः	=	फिर
आत्मनि	=	आत्म-स्वरूप (विश्व पर)
अन-	=	आत्मा न
आत्मरूपाम्	=	(मानने की) (इस दूसरी भ्रान्ति को भी)
परमात्मा	=	प्रभु (अपनी अनुग्रह शक्ति से)
विदलयति	=	मिटाता है ॥३९॥

इत्थं विभ्रमयुगलक-
समूलविच्छेदने कृतार्थस्य ।
कर्तव्यान्तरकलना
न जातु परयोगिनो भवति ।।४०।।

इत्थम्	=	इस प्रकार (पीछे कही गई)	परयोगिनः	=	श्रेष्ठ योगी को
विभ्रम- युगलक-	=	दो प्रकार की भ्रान्तियों को (प्रभु-कृपा से)	कर्तव्यान्तर-	=	किसी दूसरे (तीर्थाटन आदि में जाने की)
			कलना	=	लटक
समूल-	=	जड से	जातु	=	कभी
विच्छेदने	=	उखाड फेंकने पर	न	=	नहीं
कृतार्थस्य	=	कृतकृत्य बने हुए	भवति	=	उपजती ।।४०।।

पृथिवी प्रकृतिर्माया
त्रितयमिदं वेद्यरूपतापतितम् ।
अद्वैतभावनबलाद्
भवति हि सन्मात्रपरिशेषम् ।।४१।।*

पृथिवी	=	पृथिवी-अंड,	आपतितम्	=	प्राप्त होने पर भी
प्रकृतिः	=	प्रकृति-अंड (और)	अद्वैत-भावन-	=	अभेद-भावना के
माया	=	माया-अंड	बलात्	=	सामर्थ्य से
इदम्	=	ये	सन्मात्र-	=	सद् रूप
त्रितयम्	=	तीनों	परिशेषम्	=	अवशिष्ट ब्रह्म को ही
हि	=	तथ्य रूप से	भवति	=	प्राप्त होते हैं। अर्थात् इन तीनों अंडों में स्थित इकतीस तत्त्व सद्रूप ब्रह्म ही दीखने में आते हैं ।।४१।।
वेद्यरूपता-	=	ज्ञेय यानी पदार्थ रूपता को			

४१ इस कारिका से लेकर ४५वीं कारिका तक आचार्य अभिनवगुप्त जी श्री 'पराबीज' का उद्धार करते हुए उस पर प्रकाश डालते हैं। पराबीज " सौः "

रशना कुंडलकटकं
भेदत्यागेन दृश्यते यथा हेम ।
तद्वद्भेदत्यागे
सन्मात्रं सर्वमाभाति ॥४२॥

यथा	=	जैसे
रशना	=	(सोने की) तागडी,
कुंडल-	=	कानों का आभरण, (और)
कटकम्	=	कडा
भेद-त्यागेन	=	(आकार का) भेद मिटाने पर
हेम	=	सोना
एव	=	ही
दृश्यते	=	दिखाई देता है ।
तद्वत्	=	वैसे ही
भेद-त्यागे	=	भेद (की भावना) छोडने पर (पृथ्वी से लेकर माया तक)
सर्वम्	=	सभी (इकतीस) तत्त्व,
सन्मात्रम्	=	सपद्रूप ब्रह्म [स्] ही
आभाति	=	दिखाई देता है ॥४२॥

बीज को कहते हैं। इस 'सौः' बीज में तीन विकासों का अन्तर्भाव माना जाता है। पहिला विकास "सौः" बीज के 'स्' बीजाक्षर में है। इस में पृथ्वीतत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक इक्कतीस तत्त्वों की स्थिति मानी जाती है। दूसरा विकास "औ" बीजाक्षर में है। इसमें शुद्धविद्या तत्त्व से लेकर सदाशिव तत्त्व तक तीन तत्त्वों का अन्तर्भाव है तीसरा और अन्तिम विकास "सौः" बीज के ':' विसर्ग बीजाक्षर में अवस्थित है। इस में शक्ति तथा शिवतत्त्व इन दो तत्त्वों का अन्तर्भाव है। यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि इस पराबीज के प्रथम विकास में नररूपता की प्रधानता है। दूसरे विकास में शक्तिरूपता की प्रधानता है और तीसरे बिकास में शिवरूपता का प्राधान्य है। त्रिकशास्त्र में इस पराबीज को सर्वश्रेष्ठ माना है। अत इन श्लोकों में त्रिक रहस्य पर अभिनवगुप्त जी ने प्रकाश डाला है।

तद्ब्रह्म परं शुद्धं
शान्तमभेदात्मकं समं सकलम् ।
अमृतं सत्यं शक्तौ
विश्राम्यति भास्वरूपायाम् ॥४३॥

तत् = वही (ऊपर वर्णित ब्रह्म)
परम् = अति
शुद्धम् = निर्मल
शान्तम् = (संकल्प-विकल्प से रहित) शान्त अथवा 'श' वर्ण से आगे तृतीय वर्ण 'स' जो सदाशिव तत्त्व का द्योतक है।
अभेदात्मकम् = अभेद रूप,
समम् = सदा समान रूप,
सकलम् = जगत्--स्वरूप
अमृतम् = अमृत बीज रूप (स)
सत्यम् = सद्रूप
ब्रह्म = ब्रह्म
भास्वरूपायाम् = (इच्छा, ज्ञान तथा क्रियामय) प्रकाश-स्वरूप
शक्तौ = शक्ति (औ) में
विश्राम्यति = विश्राम को प्राप्त करता है ॥४३॥

इष्यत इति वेद्यत इति
संपाद्यत इति च भास्वरूपेण ।
अपरामृष्टं यदपि तु
नभः प्रसूनत्वमभ्येति ॥४४॥

यदपि = जो कुछ भी
'इष्यत इति' = चाहा जाता है,
'वेद्यते इति' = जाना जाता है और
संपाद्यते इति' = किया जाता है (वह यदि)
इति = इस
भास्वरूपेण = प्रकाश-स्वरूप, शक्तित्रयात्मकता से
अपरामृष्टम् = परामर्श नहीं किया जाता है
(तत् सर्वम्) = तो वह सभी
नभः = आकाश-
प्रसूनत्वम् = पुष्प की भांति (मिथ्याभाव को)
अभ्येति = प्राप्त होता है ॥४४॥

शक्तित्रिशूलपरिगम-
योगेन समस्तमपि परमेशे ।
शिवनामनि परमार्थे
विसृज्यते देवदेवेन ॥४५॥

समस्तमपि	= (इस प्रकार) ३१ तत्त्वों वाला संपूर्ण जगत् अर्थात् (स)	शिव-नामनि	= शिव अर्थात् शिव-शक्ति नामक
शक्तित्रिशूल-	= (इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया) इन तीन अराओं से युक्त शक्ति सूचक 'औ' के	परमार्थे	= परम-तत्त्व
परिगम-	= संयोग	परमेशे	= परमेश्वर में
योगेन	= से	देवदेवेन	= परमशिव के द्वारा
		विसृज्यते	= सृष्ट किया जाता है। अर्थात् विसर्ग (:) में विश्रांत होता है ॥४५॥

पुनरपि च पंचशक्ति-
प्रसरणक्रमेण बहिरपि तत् ।
अंडत्रयं विचित्रं
सृष्टं बहिरात्मलाभेन ॥४६॥

पुनरपि	= और फिर इस भेद रूप 'स' जगत् को भेदाभेद रूप शक्ति 'औ' के द्वारा अभेद-रूप शिव 'अः' में विश्रांत होने के पश्चात्	पंच-शक्ति-	= चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया नामक पांच शक्तियों के
तत्	= वे	प्रसरण-क्रमेण	= प्रसार से
विचित्रं	= विस्मयकारी	आत्मलाभेन	= अपने बाह्य स्वरूप को प्राप्त करने से
अंड-त्रयम्	= पृथिवी, प्रकृति तथा माया नाम वाले तीन अंड	बहिः	= भाह्य-दशा अर्थात् जगत् में
		सृष्टम्	= उत्पन्न किये गये हैं ॥४६॥

इति शक्तिचक्रयन्त्रं
क्रीडायोगेन वाहयन्देवः ।
अहमेव शुद्धरूपः
शक्तिमहाचक्रनायकपदस्थः ॥४७॥*

इति	=	इस प्रकार	शुद्धरूपः	=	शुद्ध-स्वरूप
शक्ति-चक्र-	=	(इच्छा, ज्ञान आदि अनन्त) शक्ति	देवः	=	क्रीडाशील ईश्वर
यन्त्रम्	=	रूप चक्र को	शक्ति-	=	शक्तियों के
क्रीडा-योगेन	=	स्वतन्त्र लीला से	महाचक्र-	=	सर्वोत्तम-चक्र को (चलाने में)
वाहयन्	=	चलाता हुआ,	नायक-	=	अगुआ का
अहमेव	=	मैं ही	पदस्थः	=	अधिकार लेकर ठहरा हुआ हूं ॥४७॥

मय्येव भाति विश्वं
दर्पण इव निर्मले घटादीनि ।
मत्तः प्रसरति सर्वं
स्वप्नविचित्रत्वमिव सुप्तात् ॥४८॥

निर्मले	=	अति स्वच्छ	भाति	=	झलकता है। (और)
दर्पणे	=	शीशे में	सुप्तात्	=	सोये हुए (पुरुष) से
घट-	=	घडे, (वस्त्र)	स्वप्न-	=	स्वप्न को
आदीनि	=	आदि पदार्थों	विचित्रत्वम्	=	विचित्रता
इव	=	की भांति	इव	=	की भांति
(इदं) सर्वं	=	यह सारा संसार	मत्तः	=	मुझ (परमेश्वर) से ही
मयि एव	=	मुझ में ही	सर्वं	=	यह सभी (प्रपंच)
			प्रसरति	=	फैलता है अर्थात् विकसित होता है ।४८॥

*४७ इस पीछे कहे गये पराबीज रूप शिव-भाव का साक्षात्कार करने पर विश्वात्मभावना की अनुभूति प्राप्त होती है। इसी विश्वात्मभावना पर प्रकाश डालते हुए आचार्य जी ४७ वीं कारिका से ५० वीं कारिका तक सर्वोपरि परम-शिव की सत्ता का निर्णय करते हैं।

अहमेव विश्वरूपः
करचरणादिस्वभाव इव देहः।
सर्वस्मिन्नहमेव
स्फुरामि भावेषु भास्वरूपमिव ॥४६॥ 5/6p.

कर-चरण-	=	हाथ, पांव
आदि-	=	आदि
स्वभावः	=	से युक्त
देहः	=	शरीर
इव	=	की भांति
विश्वरूपः	=	जगत् के रूप में भासमान
भावेषु	=	भावों अर्थात् सत्ता के विविध रूपों में
भास्वरूपम्	=	प्रकाशमान (चेतन-तत्त्व) की
इव	=	नाईं
अहमेव	=	मैं (परमेश्वर) ही
सर्वस्मिन्	=	सभी (जड-चेतन वर्ग) में
स्फुरामि	=	स्पन्दित हूं ॥४६॥

द्रष्टा श्रोता घ्राता
देहेन्द्रियवर्जितोऽप्यकर्तापि।
सिद्धान्तागमतर्कां-
श्चित्रानहमेव रचयामि ॥५०॥*

देह-	=	शरीर (और)
इन्द्रिय-	=	इन्द्रियों के
वर्जितः	=	न होने पर
अपि	=	भी (मैं चिदात्मा ईश्वर)
द्रष्टा	=	देखने वाला,
श्रोता	=	सुनने वाला तथा
घ्राता	=	सूंघने वाला (हूं)
अकर्ता	=	न कुछ करने वाला होने पर
अपि	=	भी
अहमेव	=	मैं ही
चित्रान्	=	भिन्न-भिन्न
सिद्धान्त-	=	सिद्धान्तों
आगम-	=	शास्त्रों (और)
तर्कान्	=	तर्क सम्बन्धी शास्त्रों को
रचयामि	=	रचता हूं ॥५०॥

*५०'उपनिषद्' शास्त्र में भी इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति निम्न मंत्र में की गई है :—
'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥श्वे॥।

इत्थं द्वैतविकल्पे
गलिते प्रविलङ्घ्य मोहनीं मायाम् ।
सलिले सलिलं क्षीरे
क्षीरमिव ब्रह्मणि लयी स्यात् ॥५१॥*

इत्थं	=	इस प्रकार	सलिलं	=	पानी की भांति
द्वैत-विकल्पे	=	द्वैत की भावना के	क्षीरमिव	=	दूध में दूध की नाईं (योगी भी)
गलिते	=	मिटने पर	ब्रह्मणि	=	परब्रह्म में
मोहनीं	=	छलने वाली	लयी	=	लीन
मायाम्	=	माया को	स्यात्	=	हो जाता है। ॥५१॥
प्रविलङ्घ्य	=	पार करके,			
सलिले	=	पानी में			

इत्थं तत्त्वसमूहे
भावनया शिवमयत्वमभियाते ।
कः शोकः को मोहः
सर्वं ब्रह्मावलोकयतः ॥५२॥

इत्थं	=	इसी भांति	सर्वं	=	सम्पूर्ण (जगत) को
भावनया	=	स्वरूप के परामर्श से	ब्रह्म	=	शिवमय (ही)
तत्त्व समूहे	=	(बाह्य रूप में भासमान) तत्त्व-जाल के	अवलोकयतः	=	देखने वाले (ज्ञानी) को
शिवमयत्वम्	=	शिव रूप	कः शोकः	=	काहे का शोक (और)
अभियाते	=	दीखने पर	कः मोहः	=	काहे का मोह है ।५२॥

*५१ऊपर-वर्णित ५१ वीं कारिका तथा अगली ५२ वीं कारिका में आचार्य अभिनवगुप्त जी, पहिले कहे गये विश्वात्म-भावना के फल की ओर संकेत करते हैं कि कैसे इस विश्वात्म-भावना का अनुशीलन करने से योगी परम-शिव-भाव में सदा के लिए तल्लीन बन जाता है।

कर्मफलं शुभमशुभं
मिथ्याज्ञानेन संगमादेव ।
विषमो हि संगदोष-
स्तस्करयोगोऽप्यतस्करस्येव ॥५३॥

(इस पशु-प्रमाता को)			इव	=	जैसे
शुभम्	=	शुभ (पुण्य रूप)	अतस्करस्य	=	कभी भी चोरी न करने वाले सज्जन को
च	=	और	अपि	=	भी
अशुभम्	=	अशुभ (पाप रूप)	तस्कर-योगः	=	चोरों के साथ संपर्क होने का दोष लगता है,
कर्म-फलं	=	कर्मों का फल	हि	=	क्योंकि (कहा है कि)
मिथ्या-	=	विपरीत	संगदोषः	=	संगति का दोष
ज्ञानेन	=	ज्ञान से	विषमः	=	विकट होता है ॥५३॥
संगमादेव	=	लिपटे रहने से ही होता है ।			

लोकव्यवहारकृतां
य इहाविद्यामुपासते मूढाः ।
ते यांति जन्ममृत्यू
धर्माधर्मार्गलाबद्धाः ॥५४॥

इह	=	इस संसार में	ते	=	वे
ये	=	जो	धर्म-	=	पुण्य-
मूढाः	=	मूर्ख	अधर्म-	=	पाप रूपी
लोकव्यवहार-	=	लोकव्यवहार से	अर्गल-	=	बन्धनों में
कृताम्	=	उत्पन्न हुई	आबद्धाः	=	जकडे जाकर
अविद्याम्	=	भेद-प्रथा के	जन्म-	=	जन्म और
उपासते	=	शिकार हो जाते हैं,	मृत्यू-	=	मरण को (पुनः पुनः)
			यांति	=	प्राप्त होते हैं ॥५४॥

अज्ञानकालनिचितं
धर्माधर्मात्मकं तु कर्मापि ।
चिरसंचितमिव तूलं
नश्यति विज्ञानदीप्तिवशात् ॥५५॥

चिर-	=	चिरकाल	धर्म-	=	धर्म (और)
संचितं	=	इकट्ठी की गई	अधर्म-	=	अधर्म
तूलं	=	रूई	आत्मकम्	=	रूप
इव	=	जैसे (अग्नि से जल कर राख हो जाती है वैसे ही)	कर्म	=	कर्म
			अपि	=	भी
अज्ञान-	=	अज्ञान	विज्ञानदीप्ति-	=	ज्ञानरूपी लपट के
काल-	=	दशा में	वशात्	=	द्वारा
निचितम्	=	संचित किया गया	नश्यति	=	नष्ट होता है ॥५५॥

ज्ञानप्राप्तौ कृतमपि
न फलाय ततोऽस्य जन्म कथम् ।
गतजन्मबन्धयोगो
भाति शिवार्कः स्वदीधितिभिः ॥५६॥

ज्ञान-प्राप्तौ	=	आत्म-ज्ञान के प्राप्त होने पर	कथम्	=	कैसे अर्थात् किस फल के आधार पर हो सकता है । (अतः)
कृतम्	=	किया गया (शुभ या अशुभ) कर्म	गत-जन्म-	=	आवागमन रूपी
अपि	=	भी	बन्ध-योगः	=	बन्धन से छूटा हुआ
फलाय	=	फल	शिव-अर्कः	=	शिव रूपी सूर्य बना हुआ
न	=	नहीं देता है ।	योगी	=	(यह) योगी
ततः	=	तब	स्वदीधितिभिः	=	अपनी ही चिदरश्मी रूपी किरणों से
अस्य	=	इस (ज्ञानी) का	भाति	=	प्रकाशित होता है ॥५६॥
जन्म	=	जन्म			

तुषकम्बुककिंशारुक[1][2][3]-
मुक्तं बीजं यथाङ्कुरं कुरुते ।
नैव, तथाणवमाया-
कर्मविमुक्तो भवाङ्कुरं ह्यात्मा ॥५७॥

तुष-	=	तुष,	कुरुते	=	उपजाता है
कंबुक-	=	कंबुक,	तथा	=	वैसे ही तो
किंशारुक-	=	किंशारुक से	आणव-	=	आणव-मल,
मुक्तं	=	छूटा हुआ	माया-	=	मायीय-मल, (और)
बीजं	=	{ शालीका बीज अर्थात् चावल	कर्म-	=	कार्ममल से
यथा	=	जैसे	विमुक्तः	=	मुक्त बनी हुई (यह)
अंकुरं	=	कोंपल	आत्मा	=	आत्मा
नैव	=	नहीं	भवाङ्कुरं	=	संसार रूपी अंकुर को
			(न कुरुते)	=	नहीं उत्पन्न करती है ॥५७॥

आत्मज्ञो न कुतश्चन
बिभेति सर्वं हि तस्य निजरूपम् ।
नैव च शोचति यस्मात्
परमार्थे नाशिता नास्ति ॥५८॥

आत्मज्ञः	=	आत्म-ज्ञानी	(सः)	=	वह
कुतश्चन	=	किसी से भी	नैव च	=	कदापि भी
न	=	नहीं	शोचति	=	शोक नहीं करता,
बिभेति	=	डरता है	यस्मात्	=	यतः
हि	=	क्योंकि	परमार्थे	=	{ शुद्ध प्रमातृ-भाव के प्राप्त होने पर
तस्य	=	उसे	नाशिता	=	नाश (किसी भी दशा में)
सर्वम्	=	यह संपूर्ण (जगत्)	नास्ति	=	नहीं होता है ॥५८॥
निजरूपम्	=	अपना ही स्वरूप है ।			

[1] तुष = शाली का जो प्रथम छिलका अलग किया जाता है, उसे संस्कृत में तुष कहते हैं ।

[2] कंबुक = छिलके के पश्चात् अब जो चावल प्रकट होता है उस चावल के ऊपरी छिलके को संस्कृत में कंबुक कहते हैं ।

[3] किंशारुक = अति प्राचीन किस्म की शाली के पीछे महीन छोटी छोटी दुम सी लगी होती थी उसे संस्कृत में किंशारुक कहते हैं ।

अतिगूढहृदयगञ्ज-
प्ररूढपरमार्थरत्नसंचयतः ।
अहमेवेति महेश्वर-
भावे का दुर्गतिः कस्य ॥५९॥

अतिगूढ	=	अत्यन्त गुप्त	महेश्वर-	=	महेश्वरत्व के
हृदय-गंज-	=	हृदय रूपी कोष में	भावे	=	सिद्ध होने पर
प्ररूढ-	=	उत्पन्न हुए	का	=	कौन सी
परमार्थ-रत्न	=	परमार्थ रूपी रत्न के	दुर्गतिः	=	दुर्गति अर्थात् मित-सिद्धियों के प्रति आकर्षण
संचयतः	=	संग्रह से	कस्य	=	किस (परम योगी) को हो सकता है ॥५९॥
अहम्	=	मैं ही (शिव) हूं			
इति	=	इस प्रकार			

मोक्षस्य नैव किंचिद्
धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र ।
अज्ञानग्रन्थिभिदा
स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ॥६०॥

मोक्षस्य	=	मोक्ष का	गमनम्	=	जाना अर्थात् लय होना मोक्ष है ।
किंचित्	=	कोई भी (निश्चित) स्थान,			(सत्य तो यह है कि)
धाम	=	ठांव	अज्ञान-	=	अज्ञान रूपी
नैव	=	नहीं	ग्रन्थि-	=	गंठी
अस्ति	=	है	भिदा	=	काटने से
न च	=	और नहीं	स्वशक्ति-	=	अपनी (मूलभूत) चिदानन्द आदि शक्तियों का
अन्यत्र	=	किसी अन्य (द्वैत-वादियों से अभिमत) द्वादशान्त आदि धारणा-देश में	अभिव्यक्तता	=	प्रकट होना ही
अपि	=	ही	मोक्षः	=	मोक्ष कहलाता है ।६०।

भिन्नाज्ञानग्रन्थि-
गतसन्देहः पराकृतभ्रान्तिः ।
प्रक्षीणपुण्यपापो
विग्रहयोगेऽप्यसौ मुक्तः ॥६१॥

भिन्न-अज्ञान-ग्रन्थिः	=	अज्ञान रूपी गुत्थी जिसकी खुल गई है,
गत-सन्देहः	=	(आत्म-अनात्म-संबन्धी) संशय जिस का मिट चुका है,
पराकृत-भ्रान्तिः	=	(द्वैत्य-संबन्धी) भ्रम जिसका दूर हो गया है,
प्रक्षीण-पुण्य-	=	पुण्य और
पापः	=	पाप जिसके चुक गये हैं,
असौ	=	(ऐसा) यह योगी
विग्रह-	=	शरीर - धारण करते
योगे अपि	=	हुए भी
मुक्तः	=	मुक्त ही है। ॥६१॥

अग्न्यभिदग्धं बीजं
यथा प्ररोहासमर्थतामेति ।
ज्ञानाग्निदग्धमेवं
कर्म न जन्मप्रदं भवति ॥६२॥

यथा	=	जैसे
अग्नि-	=	अग्नि में
अभिदग्धम्	=	भुना गया
बीजम्	=	(शाली का) बीज
प्ररोह-	=	उग
असमर्थताम्	=	नहीं
एति	=	पाता है,
एवं	=	ऐसे ही
ज्ञान-अग्नि-दग्धम्	=	ज्ञान रूपी अग्नि से जला हुआ
कर्म	=	(शुभाशुभ) कर्म,
जन्म-	=	जन्म का
प्रदम्	=	कारण
न	=	नहीं
भवति	=	बनता है ॥६२॥

परिमितबुद्धित्वेन हि
कर्मोचितभाविदेहभावनया ।
संकुचिता चितिरेतद्
देहध्वंसे तथा भवति ॥६३॥

परिमित-	=	सीमित बनी हुई द्वैत रूपी
बुद्धित्वेन	=	बुद्धि से
कर्म-उचित-	=	किये हुए कर्मों के अनुसार
भाविदेह-	=	नये जन्म में मिलने वाले शरीर की
भावनया	=	भावना से
संकुचिता	=	सिकुड़ी हुई या यूं कहें कि आणव, मायीय तथा कार्ममल के संपर्क में आई हुई
चितिः	=	संवित्
एत्	=	इस (संसार के कर्म-फलों को भोग करने वाले)
देह-	=	शरीर के
ध्वंसे	=	नष्ट होने पर
तथा	=	उसी प्रकार की
भवति	=	बनती है अर्थात् जिस-जिस कामना से जो जो पूर्व कर्मों के फल उपार्जित किये हों उन्हीं को भोग करने वाले शरीरों को धारण करने वाली बनती है ॥६३॥

यदि पुनरमलं बोधं
सर्वसमुत्तीर्णबोद्धृकर्तृ मयम् ।
विततमनस्तमितोदित-
भारूपं सत्यसंकल्पम् ॥६४॥
दिक्कालकलनविकलं
ध्रुवमव्ययमीश्वरं सुपरिपूर्णम् ।
बहुतरशक्तिव्रात-
प्रलयोदयविरचनैककर्तारम् ॥६५॥

सृष्ट्यादिविधिसुवेधस-
मात्मानं शिवमयं विबुद्धयेत ।
कथमिव संसारो स्याद्
विततस्य कुतः क्व वा सरणम् ॥६६॥

[तिलकम्]

पुनः	=	अब
यदि	=	यदि (कोई प्रमाता
अमलम्	=	आणव आदि मलों से रहित,
बोधम्	=	ज्ञान स्वरूप
सर्व-समुत्तीर्ण-	=	सभी तत्वों से परे,
बोद्धृ-कर्तृमयम्	=	ज्ञातृ रूप और कर्तृ रूप,
विततम्	=	व्यापक,
अनस्तमित-	=	कभी न अन्त होने वाले,
उदित-भारूपम्	=	उज्ज्वल प्रकाश-स्वरूप
सत्य-संकल्पम्	=	शुद्ध संकल्पों से युक्त,
दिक्-काल-कलन-	=	देश और काल के
विकलम्	=	लगाव से रहित,
ध्रुवम्	=	अटल,
अव्ययम्	=	अविकारी,
ईश्वरम्	=	सभी ऐश्वर्य से युक्त,
सु-	=	पूर्ण-रूप से
परिपूर्णम्	=	आकांक्षा रहित,
बहुतर-	=	अनेक
शक्ति-व्रात	=	चित् (आदि) शक्ति-समूह से
प्रलय-उदय	=	(जगत-का) प्रलय तथा सृष्टि
विरचन-एक-	=	करने में
कर्तारम्	=	अद्वितीय कर्ता,
सृष्टि-आदि-	=	सृष्टि, संहार इत्यादि
विधि-	=	रीति बनाने में
सु-	=	अत्यन्त कुशल
वेधसम्	=	कलाकार,
शिवमयम्	=	कल्याण-स्वरूप,
आत्मानम्	=	स्वात्मा को
विबुद्ध्येत	=	जाने
(ततः)	=	फिर भला
सः	=	वह
कथमिव	=	कैसे
संसारी	=	आवागमन से बंधा हुआ
स्यात्	=	बन सकता है (ऐसे)
विततस्य	=	व्यापक (योगी) को
कुतः	=	कहां से
क्व वा	=	या किधर
सरणम्	=	आना-जाना है

॥६४,६५,६६॥

इति युक्तिभिरपि सिद्धं
यत्कर्म ज्ञानिनो न सफलं तत् ।
न ममेदमपितु तस्ये-
ति दार्ढ्यतो न हि फलं लोके ॥६७॥*

ज्ञानिनः	=	ज्ञानी का
यत्	=	जो
कर्म	=	कर्म (होता है)
तत्	=	वह
न सफलम्	=	फल नहीं देता अर्थात् ज्ञानी के सभी कर्म भुने हुए बीज की भांति उग नहीं पाते ।
इति	=	यह कथन
लोके अपि	=	बाह्य-कर्म-काण्ड-युक्त संसार में भी
युक्तिभिः	=	इन युक्तियों से
सिद्धम्	=	सिद्ध है कि
इदम्	=	यह यज्ञ
मम न	=	मेरा अर्थात् हवन करने वाले ब्राह्मण का नहीं है
अपितु	=	किन्तु
तस्य	=	उस हवन रचाने वाले यजमान का है ।
इति	=	इस प्रकार की धारणा
दार्ढ्यतः	=	दृढ हो जाने से हवन करने वाले ब्राह्मणों को
फलं	=	उस हवन का फल
नहि	=	नहीं मिलता है ॥६७॥

*नोट :— भाव यह है कि जैसे ब्राह्मण जन, यजमान का हवन स्वयं करने पर भी उस के फल को नहीं प्राप्त कर पाते हैं क्योंकि उन को पूर्ण रूप में विश्वास होता है कि यह यज्ञादि कर्म हमारा नहीं अपितु इस यजमान का ही है; इसी प्रकार ज्ञानी भी निष्काम रूप से कर्म करने पर उस के फल को प्राप्त नहीं करते हैं ।

इत्थं सकलविकल्पान्
प्रतिबुद्धो भावनासमीरणतः ।
आत्मज्योतिषि दीप्ते
जुह्वज्ज्योतिर्मयो भवति ॥६८॥*

इत्थं	=	इस भांति	ज्योतिषि	=	अग्नि में
प्रतिबुद्धः	=	सजग (ज्ञानी)	सकल-	=	सभी
भावना-	=	स्वात्म-परामर्श रूपी	विकल्पान्	=	विकल्पों की
समीरणतः	=	वायु से	जुह्वत्	=	आहुति डालता हुआ
दीप्ते	=	प्रज्वलित	ज्योतिर्मयः	=	तेजोमय
आत्म-	=	आत्मा रूपी	भवति	=	बनता है ॥६८॥

अश्नन् यद्वा तद्वा
संवीतो येन केनचिच्छान्तः ।
यत्र क्वचन निवासी
विमुच्यते सर्वभूतात्मा ॥६९॥

यद्वा—तद्वा	=	जो मिले सो	यत्र क्वचन	=	किसी भी तीर्थ अतीर्थ स्थान में
अश्नन्	=	खाता हुआ,	निवासी	=	रहता हुआ
येन केनचित्	=	किसी भी प्रकार के (वस्त्र से अ ने शरीर को)	शान्तः	=	जितेन्द्रिय (ज्ञानी)
संवीतः	=	ढकता हुआ	सर्वभूतात्मा	=	सभी प्राणियों का स्वरूप बना हुआ
च	=	और	विमुच्यते	=	मुक्त ही हो जाता है ॥६९॥

*नोट :— विमर्श-परायण ज्ञानी सभी कर्मों को आत्म- अनुसन्धान -पूर्वक करता हुआ, आत्म-अग्नि में आहुति देता हुआ, ठहरता है अतः वह सदा ज्ञान-रूपी प्रकाश से कांतिमान रहता है ।

हयमेधशतसहस्रा-
ण्यपि कुरुते ब्रह्मघातलक्षाणि ।
परमार्थविन्न पुण्यै-
र्न च पापैः स्पृश्यते विमलः ॥७०॥

परमार्थवित् = परमार्थ को तात्त्विक रूप से जानने वाला ज्ञानी
हयमेध शत-सहस्राणि = हजारों अश्वमेध यज्ञ
ब्रह्म - घात-लक्षाणि = लाखों ब्रह्महत्यायें
अपि = भी
कुरुते = (क्यों न) करे
(तथापि) = फिर भी
विमलः = यह निर्लिप्त (ज्ञानी)
पुण्यैः = अश्वमेध संबन्धी पुण्यों
च = और
पापैः = ब्रह्म-घात संबन्धी पापों से
न स्पृश्यते = अछूता रह जाता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे उत्तम ज्ञानी को पुण्य और पापों का बन्धन बाधित नहीं करता ॥७०॥

मदहर्षकोपमन्मथ-
विषादभयलोभमोहपरिवर्जी ।
निस्तोत्रवषट्कारो
जड इव विचरेदवादमतिः ॥७१॥

(इस प्रकार का यह जीवन्मुक्त ज्ञानी)
मद- = अहंकार,
हर्ष- = प्रसन्नता,
कोप- = क्रोध,
मन्मथ- = काम,
विषाद- = शोक,
भय- = डर,
लोभ- = लालच (और)
मोह- = अज्ञान से
परिवर्जी = दूर रहने वाला
अवादमतिः = (तर्क तथा संशय से) ऊपर उठी हुई बुद्धि वाला,
निःस्तोत्र- = स्तोत्र पाठ या
वषट्कारः = वषट्कार से रहित
जडः इव = उदासीन सा
विचरेत् = विचरता है ॥७१॥

मदहर्षप्रभृतिरयं
वर्गः प्रभवति विभेदसंमोहात् ।
अद्वैतात्मविबोध-
स्तेन कथं स्पृश्यतां नाम ॥७२॥

मद-	=	अभिमान
हर्ष-	=	प्रसन्नता
प्रभृतिः	=	आदि का
अयम्	=	यह
वर्गः	=	समुदाय
विभेद-	=	भेद-भाव के कारण होने वाले
संमोहात्	=	अज्ञान से ही
प्रभवति	=	उत्पन्न होता है
अद्वैत-	=	अभेद रूप बना हुआ
आत्म-विबोधः	=	आत्म-ज्ञानी
तेन	=	उस मद आदि वर्ग से
कथम्	=	कैसे
नाम	=	भला
*स्पृश्यताम्	=	छुआ जा सकता है। अर्थात् उन जीव-विकारों की लपट में कैसे आ सकता है ॥७२॥

वासिष्ठ शास्त्र में भी कहा है —

एतावदेव खलु लिंगमलिंगमूर्तेः
संशान्तसंसृतिचिरभ्रमनिर्वृतस्य ।
तज्ज्ञस्य यद् मदनकोपविषादमोह-
लोभापदामनुदिनं निपुणतनुत्वम् ॥

*जब तक द्वैत रूपी भ्रांति होती है तभी तक अहंकार, मोह, हर्ष आदि की कल्पना रहती है। जब बाहर-भीतर सभी शिवमय ही भासित होता है तो मद, मोह आदि का झंझावात इस जीवन्मुक्त का क्या बिगाड सकता है।

स्तुत्यं वा होतव्यं
नास्ति व्यतिरिक्तमस्य किंचन च ।
स्तोत्रादिना स तुष्येन्
मुक्तस्तन्निर्नमस्कृतिवषट्कः ॥७३॥

अस्य	=	(इस परमयोगी) का	(यस्य)	=	जिसकी
किंचन	=	कोई भी (देवता)	स्तोत्र-	=	स्तुति
व्यतिरिक्तम्	=	अपने स्वरूप से भिन्न	आदिना	=	आदि करके
स्तुत्यम्	=	स्तुति के योग्य	सः	=	वह योगी
वा	=	अथवा	तुष्येत्	=	प्रसन्न बनता
होतव्यम्	=	होम करने योग्य	तत्	=	अतः (ऐसा जीवन्मुक्त योगी)
न	=	नहीं	निर्नमस्कृति-	=	नमस्कारों (और)
अस्ति	=	है ।	*वषट्कः	=	वषट्कारों से छूटा हुआ
			मुक्तः	=	मुक्त है ॥७३॥

षट्त्रिंशत्तत्त्वभृतं
विग्रहरचनागवाक्षपरिपूर्णम् ।
निजमन्यदथ शरीरं
घटादि वा तस्य देवगृहम् ॥७४॥

*हवन के समय देवताओं का नाम लेकर अग्नि में जो घी की आहुति दी जाती है उसे 'वषट्' कहते हैं ।

षट्त्रिंशत्	=	छत्तीस	
तत्त्व-	=	तत्त्वों पर	
भृतम्	=	आधारित	
विग्रह-रचना-	=	शरीर की बनावट के रूप में	
गवाक्ष-परिपूर्णम्	=	वातायन (रोशनदान) से युक्त	
निजम्	=	अपना	
अथ	=	या	
अन्यत्	=	पराया	
शरीरम्	=	शरीर	
वा	=	अथवा	
घट-	=	घडा	
आदिः	=	आदि (भाव वग)	
तस्य	=	उस (योगीन्द्र का)	
देव-गृहम्	=	देवालय (मन्दिर) ही है ॥७४॥	

तत्र च परमात्ममहा-
भैरवशिवदेवतां स्वशक्तियुताम् ।
आत्मामर्शनविमल-
द्रव्यैः परिपूजयन्नास्ते ॥७५॥*

(स योगी)	=	वह योगी
तत्र च	=	उस (देह रूपी देवालय में)
स्व-शक्ति-युताम्	=	अपनी (ज्ञानमय इन्द्रिय) शक्तियों से युक्त
परमात्म-	=	परमात्मा अर्थात्
महाभैरव-	=	महाभैरव रूपी
शिव-देवताम्	=	चिदात्मा महादेव की
आत्म-आमर्शन-	=	आत्म-विमर्श रूपी
विमल-	=	अति-निर्मल
द्रव्यैः	=	(शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध नामक) सामग्री से
परिपूजयन्		प्रति समय पूजा
आस्ते	=	करता रहता है। ॥७५॥

कहा भी है :—

देहो देवालयो देवि ! जीवो देवः सदाशिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ॥

७५ इस कारिका में अभिनवगुप्त जी ने वास्तविक स्वात्म-पूजा की ओर संकेत किया है। इस पूजा में पुष्प, धूप, दीप आदि, बाह्य सामग्री की आवश्यकता नहीं रहती है।

बहिरन्तःपरिकल्पन-
भेदमहाबीजनिचयमर्पयतः ।
तस्यातिदीप्तसंवि-
ज्ज्वलने यत्नाद्विना भवति होमः ॥७६॥‡

बहिः	=	(शरीर से) बाहर पदार्थ-वर्ग (तथा)	अतिदीप्त-	=	अत्यन्त प्रज्वलित
अन्तः	=	अन्तःकरण में ठहरे हुए सुख, दुःख आदि	संवित्-	=	ज्ञान रूपी
परिकल्पन-	=	कल्पनाओं का रूप धारण करने वाले	ज्वलने	=	अग्नि में
भेद-	=	भेद-प्रथा	अर्पयतः	=	अर्पण करने वाले
महा-	=	बड़े (भयंकर भेद-प्रथा से युक्त)	तस्य	=	उस (योगी) को
बीज-	=	(संस्कार के रूप में ठहरे हुए) बीज के	यत्नात्	=	जौ, घी, ब्राह्मण आदि सामग्री जुटाने के
निचयम्	=	समूह को	विना	=	बिना अनायास ही
			होमः	=	हवन
			भवति	—	सिद्ध होता है। ॥७६॥

‡ ७६ उपरोक्त श्लोक में आचार्य जी वास्तविक होम की ओर संकेत करते हैं, जहां हवन-सामग्री जुटाने के बिना ही महाहोम सिद्ध होता है।

* *७५ श्रीमान् आचार्य जी ने श्रीतन्त्रालोक में भैरव का तात्विक अर्थ ऐसे किया है :— भरण-पालन-पोषण करने वाला, रवण-भेद-प्रथा से छूटने के लिए चिल्लाहट करवाने वाला तथा वमन-संसार की सृष्टि करने के लिए उबकाई करने वाले को महाभैरव अर्थात् परमात्मा कहते हैं।

ध्यानमनस्तमितं पुन-
रेष हि भगवान् विचित्ररूपाणि ।
सृजति तदेव ध्यानं
संकल्पालिखितसत्यरूपत्वम् ।७७।।*

हि = निश्चय करके		तदेव = वही	
एषः = यही		संकल्प- = योगि-संकल्प के द्वारा संवित् की भित्ति पर	
भगवान् = शिव रूप बना हुआ परम-योगी		आलिखित- = अंकित	
पुनः = फिर अर्थात् अवधारण करके		अनस्तमितं = कभी समाप्त न होने वाला	
विचित्र-रूपाणि = संसार में दीखने वाले विस्मय-कारी रूपों को		सत्य- = पारमार्थिक	
सृजति = (बुद्धि-दर्पण में) अवभासित करता रहता है।		रूपत्वम् = भावमय अर्थात् प्रथमाभासरूप	
		ध्यानम् = ध्यान	
		(भण्यते) = कहलाता है ।।७७।।	

भुवनावलीं समस्तां
तत्त्वक्रमकल्पनामथाक्षगणम् ।
अन्तर्बोधे परिवर्तयति
यत्सोऽस्य जप उदितः ।।७८।।‡

*इस कारिका में भगवान् अभिनवगुप्त जी उस पारमार्थिक ध्यान का उल्लेख करते हैं जो ध्यान कभी भी अस्त नहीं होता अर्थात् जो सदा बना रहता है।

‡उपरोक्त कारिका की व्याख्या में योगराजाचार्य ने भुवनों की संख्या दो सौ चालीस कही है किन्तु आचार्य अभिनवगुप्त जी ने भुवनों की संख्या एक सौ अठारह कही है, अतः उन्हीं के मतानुसार ऊपर भुवनों की संख्या एक सौ अठारह ही कही है।

(अयम्)	=	(यह उत्कृष्ट योगी)
यत्	=	जो कि
समस्ताम्	=	सभी
भुवन-	=	(एक सौ अठारह) भुवनों की
आवलीम्	=	पंक्ति,
तत्त्व-क्रम-	=	छत्तीस तत्त्वों की क्रमिक
कल्पनाम्	=	कल्पना,
अथ	=	और
अक्ष-गणम्	=	इन्द्रियों की वृत्तियों को
अन्तर्-वीथे	=	संवित् (चेतना) में
परिवर्तयति	=	घुमाता है अर्थात् पराहन्ता से युक्त प्रत्यवमर्श करता रहता है,
सः	=	वही
अस्य	=	इस (योगी) का
जपः	=	(वास्तविक) जप
उदितः	=	कहलाता है ॥७८॥

सर्वं समया दृष्ट्या
यत्पश्यति यच्च संविदं मनुते ।
विश्वश्मशाननिरतां
विग्रहखट्वाङ्गकल्पनाकलिताम् ॥७९॥
विश्वरसासवपूर्णं
निजकरगं वेद्यखंडककपालम् ।
रसयति च यत्तदेतद्
व्रतमस्य सुदुर्लभं च सुलभं च ॥८०॥

(यह योगी)

समया-	=	सम अर्थात् अद्वैत
दृष्ट्या	=	दृष्टि से
यत्	=	जो
पश्यति	=	देखता है,
च	=	और
यत्	=	जो
विग्रह-	=	देह रूपी
खट्वांग-	=	अस्थि-पंजर की
कल्पना	=	कल्पना से
कलिताम्	=	गृहीत
विश्व-श्मशान-	=	संसार रूपी श्मशान में
निरतां	=	वास करती हुई
संविदम्	=	स्वात्म-संवित्ति को
मनुते	=	जानता है,
च	=	और

यत्	=	जो
विश्व-	=	जगत् संबन्धी सभी शब्द, स्पर्श आदि
रस-	=	रस रूपी
आसव-	=	मदिरा से
पूर्णम्	=	भरे हुए
निज-	=	अपने
कर-गम्	=	हाथ में रखे हुए अथवा इन्द्रियों में अवस्थित
वेद्य-खंडक-	=	प्रमेय-अंश रूपी
कपालम्	=	खप्पर का (अर्थात् खप्पर में रखे हुए शब्द, स्पर्श, आदि वीर पान का
रसयति	=	आस्वाद अर्थात् चमत्कार अनुभव करता है।
अस्य	=	इस योगी का
तद्-एतत्	=	वही यह
व्रतम्	=	व्रत
सुदुर्लभम्	=	बहुत कठिन (भी) है।
च	=	और
सुलभम्	=	सहज
च	=	भी है ॥७९, ८०॥

इति जन्मनाशहीनं

परमार्थमहेश्वराख्यमुपलभ्य ।

उपलब्धृताप्रकाशात् ।

कृतकृत्यस्तिष्ठति यथेष्टम् ॥८१॥

(स योगी)	=	(वह योगी)
इति	=	इस प्रकार
जन्म-नाश-	=	जन्म और मृत्यु से
हीनम्	=	रहित
परम-अर्थ-	=	पर-रूप
महेश्वर-	=	महेश्वर-
आख्यम्	=	भाव को
उपलभ्य	=	प्राप्त करके
उपलब्धृता-	=	ज्ञाता के रूप में
प्रकाशात्	=	प्रकट होने से
कृतकृत्यः	=	सफल-मनोरथ बन कर
यथेष्टम्	=	मनमाने रूप से
तिष्ठति	=	रमता है ॥८१॥

व्यापिनमभिहितमित्थं
सर्वात्मानं विधूतनानात्वम् ।
निरुपमपरमानन्दं
यो वेत्ति स तन्मयो भवति ॥८२॥

इत्थम्	=	इस प्रकार	परम-आनन्दम्	=	आत्म-बोध रूपी आनन्द को
अभिहितम्	=	कहे गये	यः	=	जो कोई
व्यापिनम्	=	सर्वव्यापक	वेत्ति	=	जानता है
सर्व-आत्मानम्	=	जगत्-आत्मा,	सः	=	वह (स्वयं)
विधूत-नानात्वम्	=	भेदात्मक विविध रूपों को परे झाड कर	तन्मयः	=	वही (आनन्द)
निर्-उपम-	=	उपमा-रहित (अलौकिक)	भवति	=	बनता है, अर्थात् आनन्दमग्न हो जाता है ॥८२॥

तीर्थे श्वपचगृहे वा
नष्टस्मृतिरपि परित्यजन्देहम् ।
ज्ञानसमकालमुक्तः
कैवल्यं याति हतशोकः ॥८३॥

हत-शोकः	=	(सांसारिक) सन्तापों से छूटा हुआ (उत्तम योगी)	श्वपच-	=	चमार के
			गृहे	=	घर में
(मृत्युकाले)	=	(मृत्यु के समय)	देहम्	=	शरीर को
नष्ट-स्मृतिः	=	स्मरण-शक्ति के समाप्त	परित्यजन्	=	छोडता हुआ
अपि	=	होने पर भी	ज्ञान-समकाल-	=	ज्ञान-प्राप्ति के समय ही
तीर्थे	=	पुण्य-स्थान में	मुक्तः	=	बन्धन-रहित बना हुआ
वा	=	या	कैवल्यम्	=	शिव-भाव को
			याति	=	प्राप्त करता है ॥८३॥

पुण्याय तीर्थसेवा
निरयाय श्वपचसदननिधनगतिः ।
पुण्यापुण्यकलङ्क-
स्पर्शाभावे तु किं तेन ॥८४॥

तीर्थ-सेवा	=	तीर्थों पर जाना	तु	=	किंतु
पुण्याय	=	पुण्य का कारण माना जाता है (और)	पुण्य-अपुण्य-	=	पुण्य तथा पाप
श्वपच-सदन-	=	चमार के घर में	कलंक-स्पर्श-	=	के दोष से
निधन-गतिः	=	मरना	अभावे	=	अछूता रहने पर (इस योगी को)
निरयाय	=	नरक में जाने का हेतु माना जाता है,	तेन	=	(गतानुगतिक) अर्थात् लीक से चले आते हुए अंध-विश्वास से
			किम्	=	क्या लाभ है ॥८४।

तुषकम्बुकसुपृथक्कृत-
तंडुलकणतुषदलान्तरक्षेपः ।
तंडुलकणस्य कुरुते
न पुनस्तद्रूपतादात्म्यम् ॥८५॥

तद्वत् कंचुकपटली-
पृथक्कृता संविदत्र संस्कारात् ।
तिष्ठन्त्यपि मुक्तात्मा
तत्स्पर्शविवर्जिता भवति ॥८६॥

यथा = जैसे
तुष- = भूसी (और)
कंबुक- = कंबु (चावल के ऊपर ठहरी हुई महीन भिल्ली) से
सुपृथक्कृत- = अलग किये गए
तंडुल-कण- = चावल के दाने को
तुष-दल- = भूसी रूप अपद्रव्य
अन्तः-क्षेपः = में डालने से (वह फोक)
तंडुल- = उस चावल के
कणस्य = दाने को (पुनः)
तद्रूप- = वही शाली का
तादात्म्यम् = रूप
न कुरुते = नहीं दे सकता है।
तद्वत् = वैसे ही

*कंचुक-पटली- = षट् कंचुकों के आवरण से
पृथक्कृता = अलग करने पर
संवित् = चेतना
अत्र = इस शरीर में
संस्कारात् = पूर्व-संस्कार के कारण
तिष्ठन्ती = ठहरी हुई
अपि = भी
तत् = उस
स्पर्श- = षट्-कंचुक के स्पर्श से
विवर्जिता = छूटी हुई
मुक्तात्मा = मुक्त
भवति = बनती है
॥८५, ८६॥

कुशलतमशिल्पिकल्पित-
विमलीभावः समुद्गकोपाधेः।
मलिनोऽपि मणिरुपाधे-
विच्छेदे स्वच्छपरमार्थः ॥८७॥

नोट :— माया, कला, विद्या, राग, काल तथा नियति को शैव-शास्त्र में 'षट्-कंचुक' कहते हैं।

एवं सद्गुरुशासन-

विमलस्थिति वेदनं तनूपाधेः ।

मुक्तमप्युपाध्यन्तर-

शून्यमिवाभाति शिवरूपम् ॥८८॥

कुशलतम-	=	अति चतुर
शिल्पि-	=	कारीगर सुनारे
कल्पित-	=	के द्वारा
विमलीभावः	=	साफ किया हुआ
मणिः	=	रत्न,
समुद्गक-	=	डिबिया की
उपाधेः	=	उपाधि से
मलिनः	=	मलिन अर्थात् आच्छादित होने पर
अपि	=	भी
उपाधेः	=	उस (डिबिया रूप) आवरण के
विच्छेदे	=	हटाने पर
स्वच्छ-परमार्थः	=	तात्विक रूप से चमकीला ही होता है।

एवम्	=	इसी भाँति
वेदनम्	=	शिष्य सबन्धी ज्ञान
सद्गुरु-	=	सद्गुरु के
शासन-	=	उपदेश से
विमल-	=	निर्मलता को
स्थिति	=	प्राप्त हुआ
अपि	=	भी
तनु-उपाधेः	=	शरीर रूपी बाधा से
मुक्तम्	=	छूट कर (तथा)
उपाधि-	=	(दूसरे) शरीर रूपी
अन्तर-	=	बाधा से
शून्यम्	=	रहित होकर
शिवरूपम् इव	=	मानो शिव रूप हो
आभाति	=	बनता है ॥८७, ८८॥

*इस कारिका में 'इव' का तात्पर्य यह है कि योगी यदि इसी शरीर में ही मुक्त बना हुआ है तथापि शरीर-संबन्ध होने तक साक्षात् शिवरूपता उसे प्राप्त नहीं होती, देह कलना छूटने पर वह परमशिव ही बन जाता है। शिवसूत्रों में भी कहा है 'शिवतुल्यो जायते'—इति।

शास्त्रादिप्रामाण्याद्
अविचलितश्रद्धयापि तन्मयताम् ।
प्राप्तः स एव पूर्वं
स्वर्गं नरकं मनुष्यत्वम् ॥८९॥

सः	=	वह (प्रमाता)
शास्त्र-आदि	=	शास्त्रों में कहे हुए या
प्रामाण्यात्	=	किसी सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त प्रमाणों के द्वारा
अपि	=	अथवा
पूर्वम्	=	पहिले (जीवित दशा में) ही
अविचलित-	=	(मन की) दृढ
श्रद्धया	=	लगन से
तन्मयताम्	=	(मरने के बाद प्राप्त किये जाने वाले स्वर्ग, नरक या मनुष्य-भाव के तादात्म्य को
प्राप्तः	=	पहुँचा हुआ

(पुनर्जन्म में उसी मानसिक संकल्प के बल से)

स्वर्गम्	=	स्वर्ग, सुख
नरकम्	=	नरक, दुःख (और)
मनुष्यत्वम्	=	मनुष्यभाव (सुख-दुःख के मिले जुले रूप) को
*प्राप्नोति	=	प्राप्त करता है ॥८९॥

*इस कारिका में 'प्राप्नोति' इस क्रिया का अध्याहार करना पडता है ।

अन्त्यः क्षणस्तु तस्मिन्
पुण्यां पापां च वा स्थितिं पुष्यन्
मूढानां सहकारी-
भावं गच्छति गतौ तु न स हेतुः ॥६०॥

तस्मिन्	=	उस (अन्तिम) क्षण में
पुण्याम्	=	पुण्य
वा	=	अथवा
पापाम्	=	पाप
च	=	भी
स्थितिं	=	अच्छी गति अथवा बुरी गति की
पुष्यन्	=	पुष्टि करता है। (किन्तु)
अन्त्यः क्षणः	=	वह मृत्युक्षण
मूढानां	=	अज्ञानियों को ही तदनुकूल गति प्रदान करने में
सहकारी-भावम्	=	सहायक
गच्छति	=	बनता है।
तु	=	परन्तु (ज्ञानी के लिए)
सः	=	वह मृत्यु-क्षण
गतौ	=	ऊर्ध्व-गति अथवा अधोगति प्रदान करने में
हेतुः	=	कारण
न	=	नहीं बनता है।६०॥

भाव यह है कि ज्ञानी का मुक्त होना स्वात्म-साक्षात्कार करने पर ही आधारित है। वह तो तात्त्विक ज्ञान-प्राप्ति के समय ही सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। उसे मृत्यु-क्षण में भगवत् स्मृति का छूटना, हिचकियां आदि देह-संबन्धी विकार अधोगति का कारण नहीं बनते हैं और न ही अन्त्य समय में अन्न-दान, नाम-स्मरण, गंगा-जल का पीना अथवा तीर्थ-स्थान में शरीर का त्यागना ऊर्ध्व-गति का कारण बनता है। यह सभी बाह्य-व्यवहार तो अज्ञानियों को ही स्वर्गादि प्राप्ति में सहायक बनते हैं।

येऽपि तदात्मत्वेन विदुः
पशुपक्षिसरीसृपादयः स्वगतिम् ।
तेऽपि पुरातनसंबोध-
संस्कृतास्तां गतिं यान्ति ॥६१॥

ये	=	जो	ते अपि	=	वे भी
[1]पशु-	=	पशु,	पुरातन-	=	पिछले जन्मों में प्राप्त
[2]पक्षि-	=	पक्षी,	संबोध-	=	ज्ञान के
[3]सरीसृपादयः	=	सांप आदि (जीव-जन्तु)	संस्कृताः	=	संस्कार से युक्त होने के कारण
अपि	=	भी	तां	=	उस (मोक्ष रूप)
तत्-आत्मत्वेन	=	ईश्वर रूप होने के कारण	गतिम्	=	अवस्था को
स्वगतिम्	=	अपने अवलम्ब को	यांति	=	प्राप्त करते हैं ॥६१॥
विदुः	=	जानते हैं			

[1] 'पशु'—इस शब्द से यहाँ पर गजेन्द्र अथवा जडभरत का अभिप्राय है। ये दोनों पशु-शरीर को धारण करते हुए भी, पूर्व-जन्म के संस्कार की स्मृति के द्वारा अन्तिम-क्षण पर नाम-स्मरण के कारण मुक्त हो गये थे।

[2] 'पक्षि'—इस शब्द से काकभुशण्डी का अभिप्राय है। उसको कौवे के शरीर में ही पूर्व-स्मृति के द्वारा मुक्ति मिली थी।

[3] 'सरीसृप'—यह शब्द राजा नहुष अथवा राजा नृग की ओर संकेत करता है। इन में से नहुष ऋषि-शाप के द्वारा सर्पशरीर और नृग को गिरगिट का शरीर प्राप्त हुआ था। दोनों को ऐसे शरीर धारण करते हुए भी नामस्मरणा के प्राचुर्य से तथा पूर्व संस्कार के कारण मुक्ति प्राप्त हुई थी।

स्वर्गमयो निरयमय-
स्तदयं देहान्तरालगः पुरुषः ।
तद्भङ्गे स्वौचित्याद्
देहान्तरयोगमभ्येति ॥९२॥

तत्	=	अतः (अपनी वासना के अनुसार)
देह-	=	देह
अन्तरालगः	=	में प्रविष्ट हुआ
अयं	=	यह
पुरुषः	=	पुरुष
स्वर्गमयः	=	सुखी (या)
निरयमयः	=	दुःखी होता है ।
तत्	=	उस देह के
भङ्गे	=	नष्ट होने पर
स्व-	=	अपनी कर्म वासनाओं के
औचित्यात्	=	स्तर के अनुसार
देह-अन्तर-	=	और और देहों के
योगम्	=	संबन्ध को
अभ्येति	=	प्राप्त करता है ॥९२॥

एवं ज्ञानावसरे
स्वात्मा सकृदस्य यादृगवभातः ।
तादृश एव सदासौ
न देहपातेऽन्यथा भवति ॥९३॥

एवं	=	इस प्रकार
ज्ञान-	=	ज्ञान प्राप्ति के
अवसरे	=	क्षण में
अस्य	=	इस उत्तम योगी को
स्वात्मा	=	अपना चित्-स्वरूप
यादृक्	=	जैसा
अवभातः	=	अनुभव में आया हो
तादृशः	=	उसी अनुभव से संपन्न बना हुआ
असौ	=	वह योगी
सदा एव	=	सदा ही रहता है
देह-पाते	=	शरीर त्यागने पर
अन्यथा	=	चित् रूप से भिन्न
न भवति	=	नहीं रहता (अर्थात् मुक्त बनता है ॥९३॥

करणगणसंप्रमोषः
स्मृतिनाशः श्वासकलिलताच्छेदः ।
मर्मसु रुजाविशेषाः
शरीरसंस्कारजो भोगः ॥६४॥

स कथं विग्रहयोगे
सति न भवेत्तेन मोहयोगेऽपि ।
मरणावसरे ज्ञानी
न च्यवते स्वात्मपरमार्थात् ॥६५॥

करण-गण-	=	इन्द्रिय-वर्ग का
संप्रमोषः	=	अपनी अपनी सुध में न रहना
स्मृति-	=	स्मरण-शक्ति
नाशः	=	खो बैठना
श्वास-	=	साँस
कलिलता-	=	ठीक-ठीक
च्छेदः	=	न चलना
मर्मसु	=	जोडों में
रुजा-विशेषाः	=	विशेष रोगों का होना
शरीर-संस्कार-जः	=	शरीर संस्कार से उत्पन्न हुआ
भोगः	=	मरने के समय होने वाला मृत्यु-भोग
विग्रह-योगे	=	शरीर के धारण
सति	=	करने पर
कथम्	=	भला क्योंकर (ज्ञानी को भी)
न	=	नहीं
भवेत्	=	प्राप्त होगा ।
किंतु	=	किंतु
मरण-	=	मृत्यु के
अवसरे	=	समय
मोह-योगे	=	मोह-योग अर्थात् वर्णित कष्ट-पूर्ण दशाओं के होने पर
ज्ञानी	=	वह ज्ञानी
स्वात्म-	=	अपने
परमार्थात्	=	वास्तविक स्वरूप से
न	=	कभी भी नहीं
च्यवते	=	डिगता । अर्थात् उसे अपना निजी स्वरूप कभी नहीं भूलता ॥६४, ६५॥

परमार्थमार्गमेनं
झटिति यदा गुरुमुखात्समभ्येति ।
अतितीव्रशक्तिपातात्
तदैव निर्विघ्नमेव शिवः ॥९६॥

(यह योगी)

यदा	=	जभी
अति-तीव्र-	=	तीव्रतम
शक्तिपातात्	=	ईश्वर-अनुग्रह से, तथा
गुरु-मुखात्	=	प्रवीण सद्गुरु के उपदेश से
झटिति	=	आंख की पलक में
एनम्	=	इस
परमार्थ-	=	मोक्ष रूपी
मार्गं	=	मार्ग को
समभ्येति	=	प्राप्त करता है
तदा एव	=	उसी क्षण
निर्विघ्नम्	=	बिना रोक टोक के
शिवः	=	शिव-भाव को
एव	=	प्राप्त करता है ॥९६॥

सर्वोत्तीर्णं रूपं
सोपानपदक्रमेण संश्रयतः ।
परतत्त्वरूढिलाभे
पर्यन्ते शिवमयीभावः ॥९७॥

*सोपान-पद	=	सीढी की पोढियों की भाँति (सिलसिलेवार)
क्रमेण	=	कन्द, हृदय, भ्रूमध्य आदि स्थानों के क्रम से
सर्व-उत्तीर्णं	=	सब से श्रेष्ठ पारमार्थिक
रूपम्	=	रूप का
संश्रयतः	=	आश्रय लेने वाले पुरुष को
पर-तत्त्व-	=	परमेश्वर भाव का
रूढि-लाभे	=	स्थैर्य प्राप्त करने पर
पर्यन्ते	=	अन्त में अर्थात् शरीर के छूटने पर
शिवमयी-	=	शिवावस्था
भावः	=	प्राप्त होती है ॥९७॥

*यहाँ पर 'सोपान पद' शब्द से यह समझना आवश्यक है कि ज्ञानी कहीं भी विश्राम करने के बिना आगे बढ़ता जावे नहीं तो बीच में ही रुक जाने पर योग-भ्रष्ट' बनने का भय होता है।

तस्य तु परमार्थमयीं
धारामगतस्य मध्यविश्रान्तेः ।
तत्पदलाभोत्सुक-
चेतसोऽपि मरणं कदाचित्स्यात् ॥९८॥
योगभ्रष्टः शास्त्रे
कथितोऽसौ चित्रभोगभुवनपतिः ।
विश्रान्तिस्थानवशाद्
भूत्वा जन्मान्तरे शिवी भवति ॥९९॥

तत्-पद-लाभ = उस पारमार्थिक स्वरूप लाभ की
उत्सुक- = तीव्र उत्कंठा से युक्त
चेतसः = हृदय वाला होने पर
अपि = भी
मध्य-विश्रान्तेः = किसी नियमित वि-ज्ञानाकल आदि अवस्था में ही ठहरने के कारण
परमार्थमयीं = पारमार्थिक स्वरूप प्रधानमय
धाराम् = पराकाष्ठा पर
अगतस्य = न पहुंचे हुए
तस्य = उस साधक को
कदाचित् = किसी समय (अकस्मात् ही)
मरणम् = मृत्यु
स्यात = हो जाये
असौ = ऐसे साधक व्यक्ति को
शास्त्रे — शास्त्रों में

योगभ्रष्टः = योग-भ्रष्ट
कथितः = कहा गया है
(जो कि मृत्यु के बाद स्वर्गादि में जाकर)
चित्र- = नाना प्रकार
भोग-भुवन-पतिः = ऐश्वर्य-भोगों से परि-पूर्ण भुवनों का स्वामी
भूत्वा = बन कर (स्वर्ग से लौटने पर)
जन्मान्तरे = दूसरे जन्म में
विश्रांति-स्थान-वशात् = पूर्व-जन्म में अधूरे छोड़े हुए अभ्यास के धागे को फिर से पकड़ कर
शिवी- = शिव ही
भवति = बनता है
॥९८, ९९॥

परमार्थमार्गमेनं
ह्यभ्यस्याप्राप्य योगमपि नाम ।
सुरलोकभोगभागी
मुदितमना मोदते सुचिरम् ॥१००॥†

हि = यतः
एनम् = इस
परमार्थ-मार्ग = मोक्ष को देने वाले मार्ग का
अभ्यस्य = अभ्यास करके अर्थात् आणव, शाक्त आदि क्रम का अनुपालन करके
योगम् = स्वरूप-स्थिति को
अप्राप्य = न पाकर
अपि = भी
नाम = तो

(यह मुमुक्षु योगी)

सुर-लोक- = स्वर्ग-लोक के
भोग- = दिव्य भोगों को
भागी = भोगता हुआ
मुदित-मना = हर्षपूर्ण बन कर
सुचिरम् = बहुत काल तक
मोदते = आनन्द लूटता है । ॥१००॥

विषयेषु सार्वभौमः
सर्वजनैः पूज्यते यथा राजा ।
भुवनेषु सर्वदेवै-
र्योगभ्रष्टस्तथा पूज्यः ॥१०१॥

†इस श्लोक में भगवत्-भक्ति का महत्व प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि यदि कोई मुमुक्षु भरसक अभ्यास करने पर भी अपने तात्त्विक स्वरूप-लाभ को न प्राप्त करे तो भी उसकी साधना निष्फल नहीं होती । मृत्यु के पश्चात् वह स्वर्गादि दिव्य लोकों में जाकर बहुत समय तक आनन्द भोगता है ।

विषयेषु	=	सभी भुवन-मंडलों में	तथा	=	वैसे ही
सार्वभौमः	=	चक्रवर्ती	भुवनेषु	=	सभी स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में
राजा	=	राजा	*योग--भ्रष्टः	=	योगभ्रष्ट (भी)
यथा	=	जैसे	सर्वदेवैः	=	सब देवताओं के द्वारा
सर्वजनैः	=	सभी लोगों के द्वारा	पूज्यः	=	पूजनीय बनता है ॥१०१॥
पूज्यते	=	पूजा जाता है,			

महता कालेन पुन-
र्मानुष्यं प्राप्य योगमभ्यस्य
प्राप्नोति दिव्यममृतं
यस्मादावर्तते न पुनः ॥१०२॥

(स्वर्ग आदि लोकों में दिव्य भोगों को भोगने के उपरान्त)

पुनः	=	फिर	दिव्यम्	=	अलौकिक (मोक्ष रूप)
महता कालेन	=	बहुत समय के अनन्तर	अमृतम्	=	अमृत को
मानुष्यं	=	(योग-अभ्यास के योग्य) मनुष्य देह को	प्राप्नोति	=	प्राप्त करता है।
प्राप्य	=	पा कर	यस्मात्	=	जिस के फल-स्वरूप
योगम्	=	योग का	पुनः	=	दुबारा (इस विश्व में)
अभ्यस्य	=	अभ्यास करके	न	=	नहीं
			आवर्तते	=	लौटता अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है ॥१०२॥

*'योगभ्रष्ट' उस योगी का नाम है जिसे अभ्यास करते हुए सांसारिक भोगों के भोगने की वासना बनी रहे। इसी वासना के फल-स्वरूप वह स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है।

तस्मात् सन्मार्गेऽस्मिन्
निरतो यः कश्चिदेति स शिवत्वम् ।
इति मत्वा परमार्थे
यथा तथापि प्रयतनीयम् ॥१०३॥

तस्मात्	=	(अतः) इस लिए
अस्मिन्	=	इस
सन्मार्गे	=	कल्याण-मार्ग में
यः	=	जो
कश्चित्	=	कोई भी
निरतः	=	लगा हुआ हो
सः	=	वह
शिवत्वम	=	शिव-भाव को ही
एति	=	प्राप्त करता है
इति	=	ऐसा
मत्वा	=	मान कर
परमार्थे	=	स्वरूप-साक्षात्कार के लिए
यथा-तथापि	=	जैसे भी हो वैसे
प्रयतनीयम्	=	प्रयत्न-पूर्वक (रुकने के बिना) आगे बढना चाहिए। ॥१०३॥

इदमभिनवगुप्तोदित-
संक्षेपं ध्यायतः परं ब्रह्म ।
अचिरादेव शिवत्वं
निजहृदयावेशमभ्येति ॥१०४॥

अभिनवगुप्त-उदितम्-संक्षेपं	=	अभिनवगुप्त द्वारा नपे-तुले शब्दों में कहे गये
इदं	=	इस
परं ब्रह्म	=	उत्तम ब्रह्म-ज्ञान का
ध्यायतः	=	विमर्श करने वाला पुरुष
निज-	=	अपने
हृदय-	=	(चित् आनन्द रूपी) हृदय में
आवेशम्-	=	व्याप्त
शिवत्वम्	=	शिव-भाव को
अचिरादेव	=	थोड़े ही समय में अर्थात् शीघ्र
अभ्येति	=	प्राप्त करता है ॥१०४॥

आर्याशतेन तदिदं
　　संक्षिप्तं शास्त्रसारमतिगूढम् ।
अभिनवगुप्तेन मया
　　शिवचरणस्मरणदीप्तेन ॥१०५॥

शिव-	=	भगवान् शंकर के	इदम्	=	इस
चरण-	=	ज्ञान-क्रिया रूप चरणों का	अतिगूढम्	=	पूर्णरूप में रहस्य से भरे हुए
स्मरण-	=	विमर्श करने से	शास्त्रसारम्	=	शास्त्रों का सार बने हुए 'परमार्थ' सार को
दीप्तेन	=	प्रज्वलित बने हुए	आर्या-शतेन	=	सौ 'आर्या' नाम वाले छन्दों में
मया	=	मुझ	संक्षिप्तम्	=	नपे-तुले-शब्दों में रचा है ॥१०५॥
अभिनवगुप्तेन	=	अभिनवगुप्त ने			
तत्	=	उसी			



DIPLOPIA

Printed at The Normal Press, Srinagar